श्री सद्गुरुवे नमः

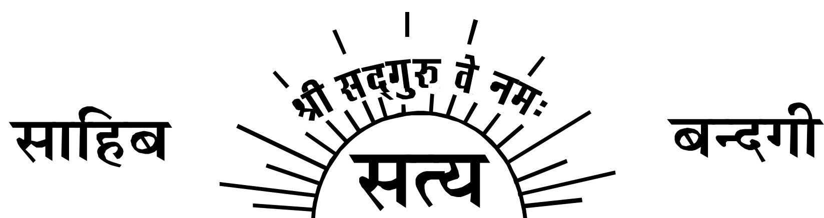
अमर लोक

अमर लोक इक अजर द्ब। हद अनहद के पार खूब।।
चढ़ि कर देखौ सुरति साग। जो कोइ निरखे बड़े भाग।।

सत्य लोक जहँ पुरष विदेही। वह साहिब करतारा।।
आदि जोत और काल निरंजन। इनका वहां न पसारा।।

संतों सो निज देश हमारा।
जहाँ जाय फिर हंस न आवै भवसागर की धारा।।

—सतगुरु मधु परमहंस जी



सन्त आश्रम रांजड़ी, पोस्ट राया, ज़िला साम्बा (जे. एण्ड के .)

अमर लोक

—सतगुरु मधुपरमहंस जी

First Edition	—	Jan., 2012
Copies	—	5000

प्रचार अधिकारी

—— राम रतन, जम्मू

Website Address.
www.sahibbandgi.org
www.sahib-bandgi.org

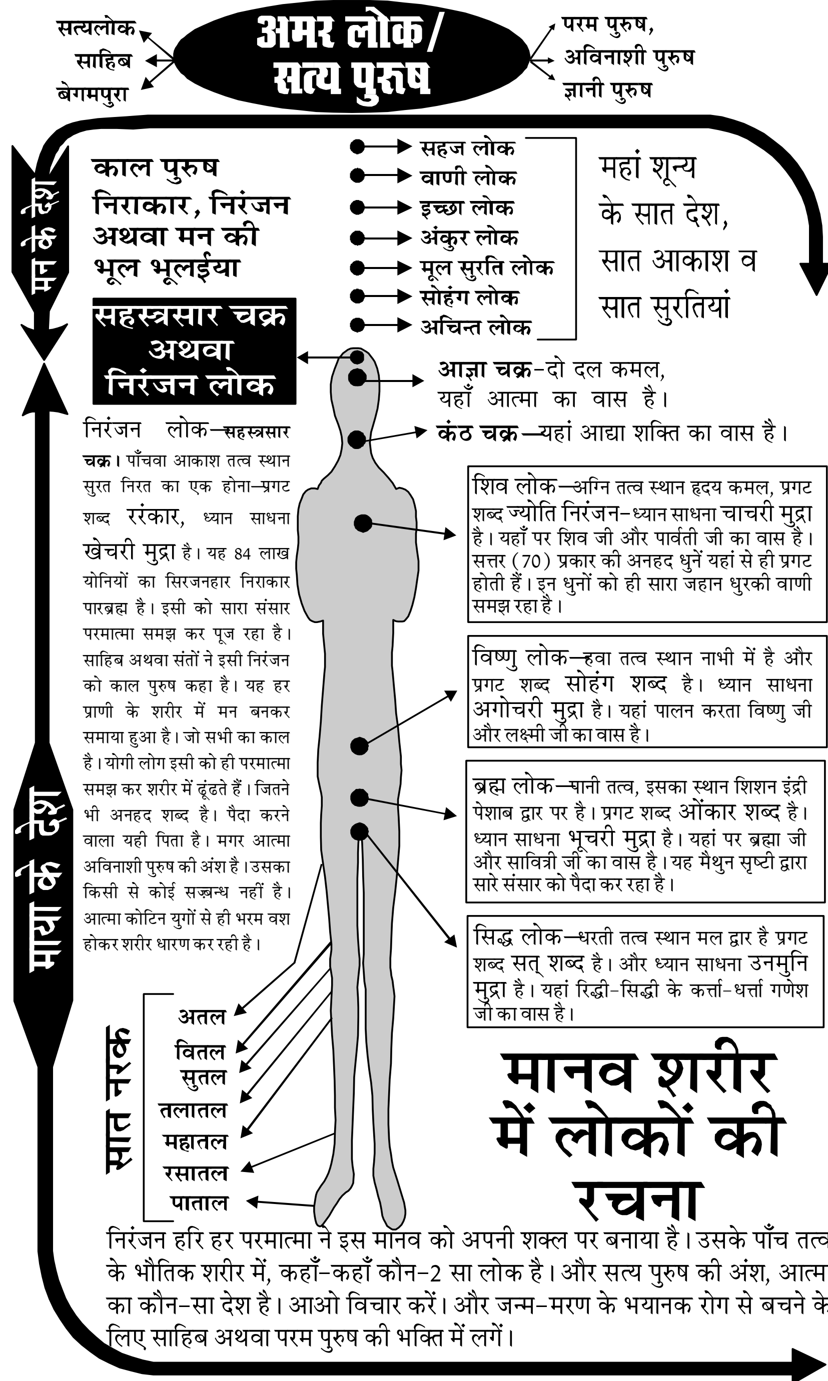
E-Mail Address.
*satgurusahib@sahibbandgi.org

Editor

Sahib Bandgi Sant Ashram Ranjri
Post -Raya, Distt.-Samba (J & K)
Ph. (01923) 242695, 242602

Mudrak : Deepawali Printers, Sodal Road, Preet Nagar, Jalandhar

विषय सूचि पृष्ठ संख्या


सत्यलोक
साहिब
बेगमपुरा
अमर लोक/
सत्य पुरुष
परम पुरुष,
अविनाशी पुरुष
ज्ञानी पुरुष
मन के देश
काल पुरुष
निराकार, निरंजन
अथवा मन की
भूल भूलईया
सहज लोक
वाणी लोक
इच्छा लोक
अंकुर लोक
मूल सुरति लोक
सोहंग लोक
अचिन्त लोक
महां शून्य
के सात देश,
सात आकाश व
सात सुरतियां
सहस्त्रसार चक्र
अथवा
निरंजन लोक
आज्ञा चक्र–दो दल कमल,
यहाँ आत्मा का वास है।
कंठ चक्र—यहां आद्या शक्ति का वास है।
निरंजन लोक—सहस्त्रसार चक्र। पाँचवा आकाश तत्व स्थान सुरत निरत का एक होना—प्रगट शब्द ररंकार, ध्यान साधना खेचरी मुद्रा है। यह 84 लाख योनियों का सिरजनहार निराकार पारब्रह्म है। इसी को सारा संसार परमात्मा समझ कर पूज रहा है। साहिब अथवा संतों ने इसी निरंजन को काल पुरुष कहा है। यह हर प्राणी के शरीर में मन बनकर समाया हुआ है। जो सभी का काल है। योगी लोग इसी को ही परमात्मा समझ कर शरीर में ढूंढते हैं। जितने भी अनहद शब्द है। पैदा करने वाला यही पिता है। मगर आत्मा अविनाशी पुरुष की अंश है। उसका किसी से कोई सज़्बन्ध नहीं है। आत्मा कोटिन युगों से ही भरम वश होकर शरीर धारण कर रही है।
शिव लोक—अग्नि तत्व स्थान हृदय कमल, प्रगट शब्द ज्योति निरंजन–ध्यान साधना चाचरी मुद्रा है। यहाँ पर शिव जी और पार्वती जी का वास है। सत्तर (70) प्रकार की अनहद धुनें यहां से ही प्रगट होती हैं। इन धुनों को ही सारा जहान धुरकी वाणी समझ रहा है।
विष्णु लोक—हवा तत्व स्थान नाभी में है और प्रगट शब्द सोहंग शब्द है। ध्यान साधना अगोचरी मुद्रा है। यहां पालन करता विष्णु जी और लक्ष्मी जी का वास है।
ब्रह्म लोक—पानी तत्व, इसका स्थान शिशन इंद्री पेशाब द्वार पर है। प्रगट शब्द ओंकार शब्द है। ध्यान साधना भूचरी मुद्रा है। यहां पर ब्रह्मा जी और सावित्री जी का वास है। यह मैथुन सृष्टी द्वारा सारे संसार को पैदा कर रहा है।
सिद्ध लोक—धरती तत्व स्थान मल द्वार है प्रगट शब्द सत् शब्द है। और ध्यान साधना उनमुनि मुद्रा है। यहां रिद्धी–सिद्धी के कर्त्ता–धर्त्ता गणेश जी का वास है।
माया के देश
सात नरक
अतल
वितल
सुतल
तलातल
महातल
रसातल
पाताल
मानव शरीर
में लोकों की
रचना
निरंजन हरि हर परमात्मा ने इस मानव को अपनी शक्ल पर बनाया है। उसके पाँच तत्व के भौतिक शरीर में, कहाँ–कहाँ कौन–2 सा लोक है। और सत्य पुरुष की अंश, आत्मा का कौन–सा देश है। आओ विचार करें। और जन्म–मरण के भयानक रोग से बचने के लिए साहिब अथवा परम पुरुष की भक्ति में लगें।

साँच कहूँ जग मारन आवै

अमर आत्मा का देश अमर लोक है। यह आत्मा वहाँ की रहने वाली है। जिस संसार में आप रह रहे हैं, यह आत्मा का देश नहीं है। यहाँ आत्मा कैद की गयी है। पूरे तीन लोक में जितनी भी आत्माएँ हैं, सब कैद हैं। वो एक अगम देश है। वहाँ की सुधि आत्मा भूल चुकी है। सद्गुरु उस अमर लोक से आत्मा को उसके अपने देश अमर लोक ले जाने के लिए आते हैं।

संसार के जितने भी धर्म, मत-मतांतर हैं, सब कमाई, योग, साधना की बात कर रहे हैं, सब तीन-लोक की बात कर रहे हैं, पर साहिब की शिक्षा सहज मार्ग की ओर चक्कर काट रही है।

जैसे हवा में तो हॉलिकॉप्टर भी उड़ता है, जेट भी उड़ता है, यान भी उड़ते हैं, पारपाइण्डर भी उड़ता है, ऐसे ही आंतरिक साधना भी अनेक सूत्रों से की जाती है, वहाँ भी विविध गति से चलने वाले शरीर हैं। पर जैसे हॉलिकॉप्टर वहाँ तक नहीं जा सकता, जहाँ तक पारपाइण्डर जा सकता है। उसकी गति में भी बड़ा अंतर है। कोई हॉलिकाप्टर, कोई हवाई जहाज़ किसी ग्रह का सफ़र तय नहीं कर सकता है। ऐसी ही सगुण-निर्गुण भक्तियों और किसी भी प्रकार के योग से इस भवसागर को पार नहीं किया जा सकता है। सद्गुरु का नाम रूपी जहाज़ ही आत्मा को तीन लोक से परे अमर लोक तक ले जाने की क्षमता रखता है।

शरीर के किसी भी स्थान पर ध्यान रोकना एक छल है, माया है।

पंच मुद्रओं के पाँचों नाम इस काया में हैं। सोहं भी इसी में है। इसलिए साहिब ने विदेह नाम की बात की है, सोहं को सच्चा नाम नहीं कहा है।

जो जन होइ हैं जौहरी,शब्द लेहु बिलगाय।
सोहं सोहं जप मुआ, मिथ्या जन्म गँवाय॥
सोहं सोहं जपे बड़े ज्ञानी।
नि:अक्षर की खबर न जानी॥

शरीर के किसी भी हिस्से से ध्यान रोकने से आध्यात्मिक शक्तियाँ नहीं जगती। इससे तो शरीर की रिद्धि सिद्धि दिव्य शक्तियां की ताक़त ही जगी अध्यात्मिक शक्तियां नहीं जगीं। शरीर की कोई भी ताक़त जगी तो निरंजन की ताक़त ही जगी। निरंजन की ताक़त को जगाकर निरंजन की सीमा से पार नहीं हुआ जा सकता है। इसलिए साहिब शरीर के किसी भी स्थान पर ध्यान रोकना मना कर रहे हैं।

साहिब धुनों पर ध्यान रोकना नहीं बोल रहे हैं। धुनें हमारे स्नायुमंडल की झँकार है। आवाज़ दो तत्व के टकराए बिना हो ही नहीं सकती। जहाँ द्वैत आ गया, वहाँ माया है। इसलिए धुनें अंतिम सत्य नहीं हैं।

सभी कह रहे कि तुम्हें कुछ करना है। कोई कमाई करने को कह रहा है, कोई साधना करने को कह रहा है, कोई दान-पुण्य करने को कह रहा है, कोई यज्ञ करने को कह रहा है, कोई तीर्थ करने को कह रहा है। पर साहिब की सच्ची भक्ति कह रही है कि तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, जो करना है वो सद्‌गुरु ने करना है। यहीं पर सब समीकरण बदल जाते हैं। क्योंकि अपने ज़ोर से, अपनी कमाई से कोई भी जीव इस भवसागर से पार नहीं हो सकता है।

सात दीप नव खण्ड में, गुरु से बड़ा न कोय।
कर्त्ता करे ना कर सके, गुरु करे सो होय॥

यदि आपका गुरु गृहस्थ है तो उससे कभी भी अपनी आत्मा के कल्याण की उम्मीद नहीं रखना। वो नहीं कर पायेगा।

मुझे आपको नाम के बाद ज्ञान नहीं देना है, दे चुका हूँ। कुछ नहीं देना है। फिर सत्संग क्या है? यह तो केवल आपको सतर्क करने के लिए है कि यह नहीं करना, वो नहीं करना। अब आपके अंदर स्वसंवेद उत्पन्न हो चुका है, केवल समझा रहा हूँ कि कहाँ-कहाँ और किस-किस से बचना।

जब भी आप मुझसे मिलेंगे आपको एक ताकत मिलेगी, आपको काम कर पाने की ताकत मिलेगी, इसलिए जल्दी-जल्दी आपके बीच आ रहा हूँ।

हमारा पंथ है—सहज मार्ग और हमारा पंथ है—भृंग मत।

सद्‌गुरु का दर्शन इस लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हमें आध्यात्मिक किरणें मिलती हैं, जो उनकी वाणी, दृष्टि और चरण स्पर्श के द्वारा हमें प्राप्त होती हैं।

जो गुरु गृहस्थ में रहकर अपने को संत कह रहा है, वो आपसे धोखा कर रहा है। वो कभी भी संत नहीं हो सकता है। एक संत चाहकर भी विषय नहीं कर सकता है। जो विषय आनन्द ले रहा है, वो माया में फँसा है। उसे सच्चे आनन्द का स्वाद अभी नहीं मिला है। फिर जो परमात्मा में मिल जाता है, वो उसी का रूप हो जाता है, उसके लिए सब बच्चे हो जाते हैं। इसलिए बाप अपनी बेटी से शादी नहीं कर सकता, उससे विषय नहीं कर सकता।



अमली होकर करे ध्यान,
गिरही होकर कथे ज्ञान।
साधु होकर कूटे भग,
कहे कबीर यह तीनो ठग।।

अमर लोक

तीन लोक से भिन्न पसारा। अमर लोक सतगुरु का न्यारा।।

कई जगहों पर साहिब ने तीन लोक से परे एक अमर लोक का वर्णन किया है। देखते हैं, कैसा है वो देश। साहिब कह रहे हैं-

तहाँ नहीं परले की छाया। नहीं तहाँ कछु मोह अरु माया।।

हम सब एक नाशवान् संसार में रह रहे हैं। जितने भी ऋषि-मुनि इस संसार में समय-समय पर आए, सबने तीन लोक की बात की, नश्वर संसार की बात की, पर साहिब ने जिस अद्‌भुत देश की बात कही, वो अमर है, कभी नष्ट नहीं होता।

यह संसार नाशवान् होने से आत्मा का देश नहीं हो सकता है, इसलिए इसे बेगाना देश कहा।

रहना नहीं देश विराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद परे घुल जाना है॥
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ-पुलझ मरि जाना है॥
यह संसार झाड़ और झाँखड़, आग लगे बरि जाना है॥
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

यह संसार आपका देश नहीं है। यह संसार तो कागज़ की पुड़िया की तरह नष्ट हो जाएगा; यह संसार तो काँटों की बाड़ी की तरह दुखदायी है, जिसमें उलझ-उलझ कर मरना ही है; यह संसार तो झाड़ी की तरह है, जो आग लग जाने से जल जायेगा, इसलिए सद्‌गुरु की शरण में जाओ, **सद्‌गुरु का नाम ही जीव का सही ठिकाना है,** वही जीव को सही

ठिकाने पहुँचाने वाला है।

क्या स्वर्ग तो नहीं है आत्मा का देश! कुछ स्वर्ग की कामना रखते हैं। नहीं, यह काल के देश में आता है। यह आपका देश नहीं है। बड़े कौतुक की बात है कि कोई पितरादि लोकों की कल्पना करता है, कोई तप लोक, कोई देव लोक, कोई ब्रह्म लोक की। तो क्या ये सब ठीक नहीं हैं। साहिब कह रहे हैं कि ये सब काल की लपेट में आते हैं।

तीन लोक है आवागमणा।।

जो भी तीन लोक के दायरे में है, सब नाश का विषय है। इसकी पुष्टि ऋग्वेद में भी है। ब्रह्माण्ड का अर्थ ही है जो बढ़ता जा रहा है। वैज्ञानिक पुष्टि कर रहे हैं कि यह ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है। सिद्धांत भी कह रहा है कि जो बढ़ता है, वो घटेगा भी, वो नष्ट भी हो जायेगा। पेड़ भी बढ़ता है; फिर घटता है। इंसान भी बढ़ता जाता है। 60 साल तक बढ़ता जाता है। फिर घटना शुरू हो जाता है। कमर टेढ़ी हो जाती है, आँखों से दिखना कम हो जाता है, दाँत टूटने लगते हैं, पाचन क्रिया के अंग कमज़ोर हो जाते हैं, चाल में अंतर आ जाता है और एक दिन आता है कि घटते-घटते मर जाता है। जो भी बढ़ रहा है, एक दिन नष्ट होगा। तो यह ब्रह्माण्ड भी नष्ट होगा। फिर यह आत्मा का देश कहाँ हुआ! यह संसार आपका देश नहीं है भाइयो! साहिब ने तुक्केबाजी वाली बात नहीं की है। कभी कविताएँ देखते हैं तो तुकबंदी ज़्यादा होती है, पर सत्यता कम होती है। लेकिन साहिब की वाणी में सत्यता है। आप विश्वास करें, यह देश आपका नहीं है।

यह संसार झाड़ और झाँखर, उलझ पुलझ मर जाना है।
रहना नहीं देश विराना है॥

वाह! यह बेगाना देश है। यहाँ हरेक चीज़ पर काल का कब्जा है।

यक लोक यक वेद दो दरिया के किनारे।

सय्याद के काबू में हैं सब जीव विचारे॥

हर व्यक्ति, हर आत्मा यहाँ काल के कब्जे में हैं, एक शातिर ताक़त के कब्जे में है। देखते हैं कि यह कैसी रचना है। ब्रह्माण्ड में कौन-कौन से देश हैं? कौन-कौन से देश उसके अधीन हैं? कहाँ तक उसका राज्य है? इस तीन लोक के अंदर 14 लोक हैं। कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं है। यह शरीर पूरा ब्रह्माण्ड है। शरीर और ब्रह्माण्ड एक जैसा है। वेद भी कह रहा है— '**पिण्डे ब्रह्मण्डे॥**' साहिब भी कह रहे हैं कि सब काया में है।

...इस घट भीतर सात समुद्र, इसी में नदिया नारा।
इस घट भीतर सूरज चंदा, इसी में नौ-लख तारा॥
...इस घट भीतर ब्रह्मा विष्णु, शिव सनकादि अपारा।
इस घट भीतर आये लेत है, राम कृष्ण अवतारा...॥

इसी कड़ी में आगे कहा—

इस घट भीतर तीन लोक है, इसी में सिरजनहारा॥

जो बाहर देख रहे हैं, सब काया में है। जंघाओं तक सात लोक आते हैं, सात पाताल आते हैं। फिर सात लोक और हैं। शरीर में जो सात चक्र हैं, वो सात लोक हैं। मूलादार से सहस्रसार चक्र तक सात लोक हैं। नीचे से शुरू करते हुए सिद्ध लोक, ब्रह्म लोक, विष्णु लोक, शिव लोक, शक्ति लोक, आत्म लोक और निरंजन लोक हैं। निरंजन लोक सबसे ऊपर है, क्योंकि वो ही तो राजा है इस शरीर और ब्रह्माण्ड का। आत्मा निरंजन और शक्ति लोक के बीच में है। शक्ति ही माया है। निरंजन मन है। यानी मन और माया के बीच आत्मा फँसी है। बाकी त्रिदेव में शिवजी का लोक सबसे ऊपर है। इसलिए उन्हें अमर देवता भी कहा जाता है। उन्हें बहुत लंबा वरदान मिला है।

यहाँ तक का विवरण वेदों में है। सात पाताल और ये सात लोक मिलाकर 14 लोक हुए। इनमें से कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं है।

कालांतर में जितने भी ऋषि-मुनि, पीर-पैगंबर आए, यहीं तक की बात की, आगे का रहस्य कोई भी नहीं जाना। इसके अंदर जो भी है, बँधा है, काल के दायरे में है। ठीक वैसे ही, जैसे राष्ट्रीय जंगल हैं, वहाँ रहने वाले जानवर सोचते हैं कि हम आज़ाद हैं। पर वो कैद हैं। पर जो शेर पिंजड़े में कैद है, वो शेर नहीं रह जाता है। धीरे-धीरे जानवर ख़त्म होने लगे तो राष्ट्रीय जंगल की योजना बनाई। वहाँ रहने वाले भी बंधे हैं; पर वो जंगल इतने बड़े हैं कि जानवरों को पता नहीं चल पाता है कि वे बंधे हैं। इस तरह तीन लोक में रहने वाले सोचते हैं कि हम आज़ाद हैं। कोई भी आज़ाद नहीं है। चाहे स्वर्ग में चले जाओ, चाहे ब्रह्मलोक में, सब कैद हैं। सब उसी शैतानी ताक़त के काबू में हैं।

हर सिम्त हर जाय में यम जाल पसारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥

हर कोई शिकंजे में है। काल ने सबको बाँधा है।

मन ही निरंजन मन ही ओंकार मन ही है करतारा।

यह ओंकार सबके अंदर है। यह इस आत्मा के साथ रह रहा है।

जीव के संग मन काल रहाई। अज्ञानी नर जानत नाहीं॥

सब उसके शिंकजे में हैं। यह संसार काल का देश है। सबके साथ में मन रूपी काल रहता है, पर अज्ञानी जीव समझ नहीं पाता है।

यह संसार काल है राजा। कर्म का जाल पसारा॥

हरेक यहाँ पर भूला हुआ है।

एक न भूला दो न भूले, जो है सनातन सोई भूला॥

सभी बंधे हैं। साहिब कह रहे हैं—

हे हंसा तू अमर लोक का, पड़ा काल वस आई।
पाँच पचीस तीन का पिंजड़ा, जामें तोही राखा भरमाई॥

हे हंसा! यह पिंजरा तुम्हारा नहीं है। यह अनित्य है। इसमें तुम्हें उलझाया गया है।

पर कौतुक है कि यह नित्य लग रहा है। यह सारा संसार अनित्य है, पर नित्य लग रहा है। इस संसार में जो भी है, झूठ है।

तीन लोक प्रलय कराई। चौथा लोक अमर है भाई॥

भ्रम और अज्ञान के कारण यह संसार नित्य लग रहा है। इस संसार की आत्मा ही भ्रम और अज्ञान है। वास्तव में संसार का कोई अस्तित्व नहीं है। अज्ञान ही संसार की आत्मा है। अज्ञान के कारण संसार का अस्तित्व है। स्वप्न निद्रा पर आश्रित है; उसका अस्तित्व नहीं है। इस तरह यह संसार अज्ञान पर आश्रित है।

...... तो आगे कह रहे हैं-

ज्ञान ध्यान तो तहाँ न लेखा। पाप पुण्य तहँवा नहीं देखा।।

हम शुभ कर्म करने को कह रहे हैं। साहिब ने कहा-

पाप पुण्य ये दोनों बेड़ी। इक लोहा इक कंचन केरी।।

ये दोनों बेड़ियाँ हैं। पर उस अमर लोक में इनका बंधन भी नहीं। तो कह रहे हैं-

पवन न पानी पुरुष न नारी, हद अनहद तहाँ नाहिं विचारी।
ब्रह्म न जीव न तत्व की छाया, नहीं तहँ दस इन्द्री निरमाया।।

यह बहुत विचारणीय बात है कि वहाँ जीव भी नहीं है। जब आत्मा शरीर को धारण करती है तो उसे जीव कहते हैं। पर वहाँ शरीर नहीं, कर्म-ज्ञान इंन्द्रियाँ नहीं। इन सबसे परे है वो देश। जैसे ए.सी. वाले कमरे में चले जाएँ तो गर्मी नहीं लगती, इसी तरह उस देश में जाकर भय नहीं लगता है, आत्मा सुरक्षित हो जाती है, क्योंकि वहाँ जीवों को कष्ट देने वाला निरंजन भी नहीं है।

तहाँ नहिं ज्योति निरंजन राई। अक्षर अचिंत तहाँ न जाई।।
काम क्रोध मद लोभ न कोई। तहँवा हर्ष शोक न होई।।

यानी सुख-दुख से भी परे है वो देश। काम, क्रोध आदि तो मन की वृत्तियाँ हैं, पर वहाँ मन ही नहीं, इसलिए यह सब नहीं है।

नाद बिंद तहाँ न पानी। नहीं तहँ सृष्टि चौरासी जानी।।

धुनें भी नहीं हैं। एक सज्जन की किताब में पढ़ा कि वहाँ धुनें हो रही हैं, बड़ी प्यारी-प्यारी। नहीं, वो सत्यलोक नहीं हो सकता। वहाँ धुनें भी नहीं हैं। आगे कह रहे हैं-

पिण्ड ब्रह्माण्ड को तहाँ न लेखा। लोकालोक तहवाँ नहीं देखा।।
आदि पुरुष तहँवा अस्थाना। यह चरित्र एको नहीं जाना।।

कहा, उसे कोई नहीं जानता है। वो अमर लोक ही आत्मा का देश है।

संतो, सो निज देश हमारा।
जहाँ जाय फिर हंस न आवै, भवसागर की धारा॥
सूर्य चंद्र तहाँ नहीं प्रकाशत, नहिं नभ मण्डल तारा।
उदय न अस्त दिवस न रजनी, बिना ज्योति उजियारा॥
पाँच तत्व गुण तीन तहाँ नहिं, नहिं तहाँ सृष्टि पसारा।
तहाँ न माया कृत प्रपंच यह, लोग कुटुम परिवारा॥
क्षुधा तृषा नहिं शीत उष्ण तहाँ, सुख-दुख को संचारा।
आधिन व्याधि उपाधि न कछु तहाँ, पाप पुण्य विस्तारा॥
ऊँच नीच कुल की मर्यादा, आश्रम वरण विचारा।
धर्म अधर्म तहाँ कछु नाहीं, संयम नियम अचारा॥
अति अभिराम धाम सर्वोपरि, शोभा अगम अपारा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, तीन लोक से न्यारा॥

विचार तो करो न, साहिब कहीं तीन-लोक से न्यारे देश की बात कर रहे है।

चाँद और सूर्य का प्रकाश भी नहीं है, तारे भी नहीं हैं, दिन और रात का खेल भी नहीं है। वहाँ पाँच तत्व भी नहीं है। नहीं हैं सच में। कुटुम्ब-परिवार आदि का झमेला भी नहीं है। फिर भूख प्यास, सर्दी-गर्मी, सुख-दुख आदि भी नहीं हैं। सुख क्या है ? सुख है-मन की इच्छाओं

की पूर्ति। मन ने इच्छा की कि फलानी चीज मिल जाए। अगर नहीं मिली तो दुख, मिल गयी तो सुख। मन ने चाहा, व्यापार में फायदा हो। नहीं हुआ तो दुख, हो गया तो सुख। बस, और कुछ नहीं है सुख। इसका संबंध ही मन की इच्छा से है। इस तरह वहाँ कष्ट और बीमारियाँ नहीं हैं। यह सब तो शरीर से संबंधित है। वहाँ शरीर ही नहीं तो बीमारियाँ कैसी! फिर ऊँच-नीच, आश्रम, वरण आदि का झमेला भी नहीं है। धर्म-अधर्म भी नहीं। वो धाम सबसे सुंदर है, उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। वो इस नीरस लोक से बहुत प्यारा है।

यह कोई कोरी कल्पना नहीं। इसमें सच्चाई है, सत्यता है। जैसे विज्ञान नयी नयी चीजें दे रहा है, आगे-आगे बोल रहा है, हम मान रहे हैं। विज्ञान तो कह रहा है कि ऐसे कई और सूर्य हैं और उनके परिवार भी हैं। आगे हम सबको मानना पड़ेगा। कुछ समझ रहे हैं, कुछ नहीं। बाद में नहीं वाले भी समझ जायेंगे, मानेंगे। बच्चों को भी पढ़ाया जायेगा। इस तरह साहिब ने जो बातें कहीं, उन्हें भी मानने वाले हुए। अब अधिक मान रहे हैं। कुछ नहीं भी मान रहे हैं। आगे सब मानेंगे। घर-घर में माता-पिता अपने बच्चों को साहिब की कथा सुनायेंगे, साहिब की वाणियों का ज्ञान देंगे। वो समय कैसा होगा, जब नन्हें-नन्हें बच्चे भी साहिब की ये वाणियाँ गुनगुनायेंगे-

मरहमी होय सो जाने संतो, ऐसा देश हमारा है।
अवधू बेगम देश हमारा है॥
वेद कितेब पार नहीं पावत, कहन सुनन से न्यारा है॥
बिन बादल जहाँ बिजुरी चमके, बिन सूरज उजियारा है।
बिना सीप जहाँ मोती उपजे, बिन मुख बैन उच्चारा है॥
ज्योति लगाए ब्रह्म जहाँ दरपो, आगे अगम अपारा है।
कहैं कबीर तहाँ रहनि हमारी, बूझै गुरुमुख प्यारा है॥

ये शब्द तीन-लोक की व्यवस्था को नकार रहे हैं, कहीं आगे की

ख़बर दे रहे हैं।

वास्तव में उस अमर लोक का वर्णन करना संभव नहीं। वो अमर लोक खुद ही सत्य पुरुष है, उसका क्या वर्णन करूँ! साहिब कह रहे हैं—

चल हंसा सतलोक, छोड़ो यह संसारा हो॥

यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है। पूरे ब्रह्माण्ड को ख़त्म होने में 30 सैकेंड लगते हैं। कभी यहाँ तूफान आ जाता है, कभी तरह-तरह के क्लेश पड़ जाते हैं, पर वहाँ ऐसा कुछ नहीं है।

तहाँ नहीं यम का क्लेशा॥

तत्व ही एक दूसरे को खुद मिटा देंगे। वो एक दूसरे के बैरी हैं। आपके घर में ही यदि आपका भाई आपको मारना चाहता है तो आप सुरक्षित नहीं हैं। इस तरह यह दुनिया सुरक्षित नहीं है; यहाँ रहने वाला कोई भी सुरक्षित नहीं है। थोड़ी गर्मी बढ़ जाती है तो मुश्किल हो जाती है, थोड़ी सर्दी बढ़ जाती है तो परेशानी हो जाती है। पर वहाँ ऐसा कुछ नहीं है।

रचना बाहर वो अस्थाना॥

कुछ सोचते हैं कि परमपुरुष कैसा होगा! आप सभी परम-पुरुष को जानते हैं। वहाँ पहुँचने पर यूँ लगता है कि यह तो मेरा ही घर है, अरे, मैं कहाँ चला गया था! जैसे स्वप्न में घूम-फिर कर आते हैं तो अपने ही घर में होते हैं। ऐसे ही आत्मा मन के कारण भ्रमित है। वो अपनी जगह है। कुछ सोचते हैं कि सत्यलोक में पता नहीं, कैसा लगेगा! जैसे सत्यलोक के नज़दीक पहुँचते हैं तो चेतना आ जाती है कि यह तो मेरा ही घर है। जैसे स्वप्न से जाग्रत में आते हैं तो लगता है कि यह तो मेरा ही घर है। तो कह रहे हैं—

ब्रह्मा विष्णु महेश न तहँवा॥

वो एक निराला देश है। वो आपका अपना देश है।

कहूँ रेक्ता दूर देश का, जोत और नूर का काम नाहीं।
शेष कर्ता तो पार पावे नहीं, दस अवतार कूँ गम नाहीं।
वेद कहते दोनों से भेद न्यारा रह्या, तहाँ तो अकेला सांही।
साँच झूठ के पड़ गया अन्तरा, साँच तो झूठ का है काम नाहीं।
कहै कबीर ओ पुरुष तो अगम है, पहुँचे कोई संतवा देश ताईं॥

कह रहे हैं कि जिस दूर देश की मैं बात कह रहा हूँ, वहाँ ज्योति और प्रकाश का काम नहीं है। वहाँ तो शेषनाग, सृष्टि कर्त्ता, दस अवतार आदि की भी पहुँच नहीं है। वेद तो सगुण और निर्गुण दोनों की बात कह रहा है, पर वहाँ का भेद न्यारा ही है। वहाँ तो एक ही परमात्मा (साहिब) है। सत्य और झूठ में बड़ा अन्तर है। इसलिए वहाँ झूठे संसार का काम नहीं है। उस अगम देश में उस अगम-पुरुष के पास तो कोई संत ही पहुँच सकता है।

वेद निरंजन के बनाए हुए हैं। फिर उसमें ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने विचार भी मिला दिये हैं। वास्तव में वेद स्वसंवेद से निकले हैं। निरंजन ने उसमें से कुछ अंश लेकर उसमें अपनी महिमा कह दी, ताकि दुनिया उसी को माने। इसलिए उसमें परम-पुरुष का भेद नहीं है।

स्वसंवेद है सबकी आदी। ताते सकल मता मरजादी॥
वेद अरु वाणी जेते जगमहँ। स्वसंवेद है सकल पितामह॥
ताते चार वेद प्रकटाने। आदि पिता की ख़बर न जाने॥
स्वसंवेद ते वेद बनाये। तामें ऋषि मुनि मता मिलाये॥

कह रहे हैं कि वेद और वाणी जितनी भी संसार में है, उन सबकी आदि स्वसंवेद है। उसी से चार वेद प्रकट हुए हैं। निरंजन ने स्वसंवेद की वाणी में अपना मत प्रगट कर, अपनी झूठी महिमा का बखान कर, अपने को परम पिता बतलाकर परम पुरुष का भेद पूरी तरह से लुप्त कर दिया तब वो वेद कहलाए। वेद अपने पिता (निरंजन) की ख़बर नहीं जानते हैं। स्वसंवेद से ही उस निरंजन ने चार वेद बनाए और फिर उनमें सब

ऋषि, मुनियों ने अपने-अपने मत मिला दिये और तब वो वाणी जन-जन तक पहुँच रही है।

इसलिए स्वसंवेद की वाणी का शुद्ध रूप लुप्त हो गया। उसमें निरंजन ने अपने वाली बात कह दी। भ्रमित करने के लिए उसने सारा अंश नहीं लिया और फिर उसमें अपनी महिमा कह दी।

ए जियरा तैं अमर लोक को, पर्‌यो काल बस आई हो।
मनै सरूपी देव निरंजन, तोहि राख्यौ भरमाई हो॥
पाँच पचीस तीन को पिंजरा, तामें तो को राखै हो।
ता को बिसरि गई सुधि घर की, महिमा आपन गावै हो॥
निरंकार निरगुन ह्वै माया, तो को नाच नचावै हो।
चमर दृष्टि को कुलफी दीन्हो, चौरासी भरमावै हो॥
चार वेद जा की है स्वासा, ब्रह्मा अस्तुति गावै हो।
सो कथि ब्रह्मा जगत भुलाये, तेहि मारग सब धावै हो॥
जोग जाप नेम ब्रत पूजा, बहु परपंच पसारा हो।
जैसे बधिक ओट टाटी के, दे विस्वासै चारा हो॥
सतगुरु पीव जीव के रक्षक, ता के करो मिलाना हो।
जा से मिले परम सुख उपजै, पावो पद निर्वाणा हो॥
जुगन जुगन हम आय जनाई, कोई कोई हंस हमारा हो।
कहैं कबीर तहाँ पहुँचाऊँ, सत्य पुरुष दरबारा हो॥

कह रहे हैं, हे हंसा! तू तो अमर लोक का रहने वाला है, पर इस समय तू काल के वश में आ गया है। मन ही निरंजन देवता है, जिसने तुझे पाँच तत्वों से बने शरीर रूपी पिंजरे में डालकर भरमाया हुआ है। तुझे अपने सच्चे घर की सुधि भूल गयी है और इस काल निरंजन ने अपनी महिमा ही वेदों में गाई है। निर्गुण, निराकार तो माया है; वही तुझे नाना नाच नचा रही है; वही तुझे चौरासी में भरमा रही है। चार वेद तो मन की स्वाँसा से उत्पन्न हुए हैं और ब्रह्मा जी ने उसी की अस्तुति संसार में गाई

है। सभी उसी मार्ग पर चल रहे हैं। योग, यज्ञ, तप, पूजा, व्रत आदि सब काल ने जाल फैलाया है। सद्गुरु ही जीव की रक्षा करने वाले हैं, इसलिए उन्हीं से मिलकर अपने जीव का कल्याण करके निर्वाण पद को प्राप्त करो। साहिब कह रहे हैं कि मैं तो युग-युग से आकर जीवों को चेता रहा हूँ, पर कोई-कोई हंस ही मेरा हो पाता है और जो हंस मेरी बात को मानकर मेरा हो जाता है, उसे मैं परम-पुरुष के दरबार में पहुँचा देता हूँ।

तो साहिब कह रहे हैं—

अलख अगोचर जो प्रभु अहई। तासु कथा कैसे कोई कहई॥
हरि हर ब्रह्मा पार न पावै। और जीव की कौन चलावै॥
कर्त्ता पुरुष जक्त को जोई। ताको नाम न जाने कोई॥
जेते नाम जक्त ते माहीं। राय निरंजन को सब आहीं॥

कह रहे हैं कि जो अलख अगोचर परमात्मा है, उसकी कथा कोई कैसे कह सकता है! ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उसका पार नहीं पा सकते हैं, फिर अन्य जीवों की बात क्या की जाए! जो सच्चा कर्त्ता है, जिसका यह सब पसारा है, उसका नाम कोई नहीं जानता है। संसार में जितने भी नाम हैं, वो सब निरंजन के हैं।

उस लोक का वर्णन करते हुए साहिब कह रहे हैं—

सुनो धर्मदास भेद की वाणी। तहाँ न रूप रेख निशानी॥
वहाँ नहीं आदि शक्ति अवतारा। पारब्रह्म है सब से न्यारा॥
वहाँ नहिं आदि निरंजन देवा। ब्रह्मा विष्णु महेश न सेवा॥
वहाँ नहीं चन्द सूर अवतारा। अगम पुरुष सबहिते न्यारा॥
पाँच तीन तहाँ नहिं भाई। ताकी गम नहिं काहू पाई॥
ओहं सोहं और ररंकारा। न अरु प्राण अगम ते न्यारा॥
कोई न आया कोई न जाई। यह ख़बर कोई नहिं पाई॥

कह रहे हैं कि वहाँ न कोई रूप है, न रेखा। वहाँ न आद्य-शक्ति है, न अवतार। वो सबसे न्यारा है। वहाँ निरंजन देवता भी नहीं है। वहाँ

ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी नहीं हैं। वहाँ चाँद, सूर्य आदि भी नहीं हैं। वो परम-पुरुष इन सबसे न्यारा है। वहाँ पाँच तत्व और तीन गुण भी नहीं हैं। उसका भेद किसी को नहीं हुआ। वहाँ ओहं, सोहं, ररंकार आदि भी नहीं हैं। वो इन सबसे बहुत न्यारा है। उसकी ख़बर किसी को नहीं है। यह देश काल पुरुष का संसार है। यह परम पुरुष का संसार नहीं है। यदि यह सच्चे परमात्मा का देश होता तो साहिब की वाणियाँ यह क्योंकर कहतीं!

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो।
यहि संसार काल है राजा, कर्म का जाल पसारा हो॥
चौदह खंड बसे वाके मुख में, सबही को करत अहारा हो।
जारबार कोयला कर डारन, फिर फिर दे अवतारा हो॥
ब्रह्मा विष्णु शिवतन धरिया, और को कौन विचारा हो।
सुन नर मुनि सब छलछल मारले, चौरासी में डारा हो॥
मध्य अकाश आप जहँ बैठे, ज्योति शब्द ठहियारा हो।
ताको रूप कहाँ लग बरनो, अनंत भानु उजियारा हो॥
श्वेत स्वरूप शब्द जहाँ फूले, हंसा करत बिहारा हो।
कोटिन चाँद सूर्य छिपि जैहैं, एक रोम उजियारा हो॥
वही पार इक नगर बसत है, बरसत अमृत धारा हो।
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो॥

कह रहे हैं कि हे हंस! इस संसार को छोड़ो और हमारे सत्यलोक में चलो। यह संसार तो काल-पुरुष का देश है, जहाँ कर्म का जाल फैला हुआ है। यह काल-पुरुष सबको मार-मारकर बुरा हाल कर रहा है। त्रिदेव आदि भी यहाँ शरीर धारण कर रहे हैं। वो सुर, नर, मुनि आदि सबको धोखा दे रहा है और चौरासी में डाल रहा है। **वो काल स्वयं तो आकाश में ज्योति-स्वरूप होकर बैठा हुआ है। वहाँ करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है।** पर उससे परे एक देश है। वहाँ अमृत-धारा बह रही है।

वहाँ करोड़ों चाँद और सूर्य एक रोम के प्रकाश से लजा जाते हैं। हे धर्मदास! परम-पुरुष के उस दरबार को देखो।

काल-पुरुष का यह तीन लोक पाँच तत्वों से बना है। पाँचों तत्वों की एक सीमा है। शास्त्रों का भी मानना है कि महाप्रलय में ये पाँचों तत्व नष्ट हो जायेंगे। गुरु नानक देव जी की बार्णं में भी इसका उल्लेख मिलता है और वैज्ञानिक लोग भी इस सच्चाई को समझ रहे हैं।

क्या यह तीन लोक, जिसमें स्वर्ग लोक, पितर लोक, ब्रह्म लोक आदि आते हैं, नष्ट हो जायेगा? हाँ, यह सब समाप्त हो जायेगा, इसलिए यह विश्वास के योग्य नहीं है। संत-महापुरुषों ने तभी तो संसार को झूठा, अनित्य, स्वप्नवत् आदि कहा है। इसमें कुछ भी सच नहीं है, क्योंकि सब नाशवान् है। इस अनन्त को संतों ने तीन भागों में बाँटा है— शून्य, महाशून्य और अमर लोक। शून्य और महाशून्य दोनों नाशवान् हैं, पर शून्य वो स्थान है, जहाँ पर ग्रह, उपग्रह आदि हैं, जबकि महाशून्य में निर्गुण सृष्टि है। वहाँ आर्टिकल्स नहीं हैं। यानी जहाँ तक सूर्य, चाँद, तारे, ग्रह, उपग्रह आदि हैं, वो शून्य स्थान कहलाता है। शून्य की सीमा यहाँ तक है। इसके ऊपर फिर महाशून्य है। महाशून्य में ये सब नहीं है। निर्गुण स्थान है। महाशून्य में सात आकाश हैं। इन सात आकाशों को संतों ने सात सुरति कहा है। ये आकाश बड़े विराट् हैं। इनके अन्दर बड़े चुंबकीय आकर्षण हैं। इनमें एक अलोकिक आनन्द है। ये इतने विराट् हैं कि शून्य जैसी करोड़ों सृष्टियाँ एक-एक में समाती जायेंगी।

शून्य और महाशून्य में अन्तर है। जैसे आप देखते हैं, कहीं जमीन खाली पड़ी है तो कहीं पर थोड़े घर हैं। जहाँ घर हैं, उसे आबादी कहा जाता है। जहाँ जमीन पर केवल कृषि होती है, उसे कृषि भूमि कहा जाता है। जहाँ केवल जंगल-पहाड़ हैं, उसको वनभूमि कहते हैं। इस तरह आकाश में जहाँ भी पंच तत्व से बनी चीजें हैं, आर्टिकल्स हैं, उसे शून्य कहा। तीन लोक शून्य के अन्तर्गत आते हैं। शून्य से परे जो है, वो

महाशून्य है। वहाँ सात सृष्टियाँ और हैं, जिन्हें सात आकाश भी कहा।

सर्वप्रथम शून्य से पाँच असंख्य योजन ऊपर जाने पर अचिंत लोक आता है। अचिंत लोक से फिर तीन असंख्य योजन ऊपर जाने पर सोहंग लोक आता है।

कम्प्यूटर में यह गणना नहीं है। साहिब की गणना भी बड़ी जबरदस्त रही। वैज्ञानिक प्रकाशवर्ष में गिन रहे हैं, साहिब ने योजन में बताया। एक वर्ष नहीं, अगर अरबों वर्ष भी अपोलो चले, पारपाइण्डर चले, तो भी नहीं पहुँच पायेगा। तो कैसे जाएँ? भाइयो, आपकी आत्मा एक सैकेंड में अरबों मील चलती है। आपकी आत्मा में इतना वेग है।

तो अचिंत लोक और सोहं लोक में तीन असंख्य योजन का फासला है। सोहं लोक में सोहं पुरुष है।

सोहंग पुरुष के आगे जाना। मूल नाम तहां पुरुष बखाना।।
पांच असंख योजन प्रमाना। तहवां मूल नाम बंधाना।।

मूल सुरति लोक तीसरा शून्य है। वहाँ आर्टिकल्स नहीं हैं। जैसे एक जगह से आप गुजरे तो वहाँ आपको गुलाब की खुशबू लगी। कुछ दिखाई नहीं दिया लेकिन आगे गए तो चमेली के फूल की खुशबू लगी। आप और आगे जा रहे हैं, कुछ दिखाई नहीं दे रहा है, लेकिन वहाँ आपको रजनीगंधा की महक लगी। और आगे आप निकल जाते हैं तो आपको परिजात की महक लगी। फूल कहीं दिखाई नहीं दिया। इसी प्रकार महाशून्य के लोकों की अनुभूति है।

मूलपुर्ष ते आगे जाना। अंकुर नाम तहाँ पुर्ष बखाना।।
तीन असंख आगे है भाई। अंकुर नाम तहँ पुरुष रहाई।।

फिर उसके आगे अंकुर लोक है। इस तरह असंख्यों योजन दूरी पर, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है, ये सृष्टियाँ हैं।

अंकुर लोक ते आगे जाना। इक्ष नाम तहाँ पुर्ष बखाना।।
चार असंख योजन प्रमानी। इक्ष्या पुर्ष तहाँ रजधानी।।

फिर इच्छा लोक है।

इक्ष्या आगे लोक बखानो। सो तो अंश पुर्ष को जानो।।
नौ नील एक संख बखाना। बानी नाम पुर्ष स्थाना।।
पुर्ष प्रथम वाणी उच्चारा। ताते नाम सर्व आकारा।

इच्छा लोक से आगे वाणी लोक है।

बानी नाम ते आगे जाना। सहज नाम तहाँ पुर्ष बखाना।।

सातवाँ और अंतिम सहज लोक है। ये इतने विशाल-विशाल पिण्ड हैं, जिनके आगे ऐसी करोड़ों सृष्टियाँ समा जायेंगी। पर यहाँ तक भी प्रलय है।

निरंजन और सहज लोक नौ पुरुष ब्रह्माण्ड।
आदि पुरुष आगे कहु जिनते सब उत्पान।।

आदि पुरुष इनसे आगे है।

सहज अंश लग जेतिक भाखा।
वह रचना प्रलय कर राखा।।

सहज लोक तक प्रलय है। वो सब भी नाश को प्राप्त हो जाती है। शून्य-महाशून्य तक की सारी सृष्टियाँ नष्ट हो जाती हैं।

इह लोक प्रलय को प्रमाना। आगे अक्षय लोक स्थाना।।

आगे अक्षय लोक है। अक्षय यानी जिसका नाश नहीं। वहाँ प्रलय नहीं है।

सहज पुरुष ते आगे जाई। आदि पुरुष का लोक दिखाई।।
सहज एक असंख्य प्रमाणा। तहँवा आदि पुरुष स्थाना।।

सहज लोक से एक असंख्य योजन आगे जाने पर परमपुरुष का लोक है, अमर लोक है। वहाँ प्रलय नहीं है।

तहँवा नहीं प्रलय की छाया। नहीं तहाँ कछु मोह अरु माया।।

वहाँ मोह-माया भी नहीं है।

तहाँ नहीं तीन गुणन व्यवहारा।।

सत, रज, तम तीनों गुण भी वहाँ नहीं हैं।

ब्रह्मा विष्णु तहाँ न महेशा।।

वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं हैं।

नहीं तहाँ ज्योति निरंजन राई। अक्षर अचिंत तहाँ नहीं जाई।।

वहाँ निराकार निरंजन भी नहीं है। अक्षर, अचिंत आदि भी नहीं हैं।

तहाँ नहीं शिव शक्ति अवतारा।।

शिव, शक्ति, अवतार आदि भी वहाँ नहीं हैं।

ब्रह्म न जीव न तत्व की छाया। नहीं तहाँ तस इंद्री न माया।।

ब्रह्म भी नहीं है, जीव भी नहीं है, तत्व भी नहीं हैं, दसों इंद्रियाँ भी नहीं हैं, माया भी नहीं है। ये सब वहाँ नहीं हैं।

काम क्रोध मद लोभ न कोई। तहवाँ हर्ष शोक न होई।।

वहाँ काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार, सुख, दुख आदि भी नहीं हैं।

नाद बिंद को तहाँ न पानी। नहीं तहाँ सृष्टि चौरासी जानी।।
चंद सूर्य तारागण नाहीं। नहिं तहँ दिवस रैन की छाहीं।।

चौरासी लाख योनियों की सृष्टि, नक्षत्र-ग्रह-उपग्रह आदि कुछ भी नहीं है। सुबह, शाम, रात आदि नहीं है।

डार न मूल तहाँ वृक्ष न छाया। जीव शीव तहाँ काल न काया।
पवन न पानी पुरुष न नारी। हद अनहद तहाँ नाहीं विचारी।।

स्त्री-पुरुष, हद-अनहद भी नहीं है।

तंत्र मंत्र तहँ दरद न धोखा। नर्क स्वर्ग तहँवा नहीं देखा।।

स्वर्ग, नरक आदि भी नहीं है। ये सब चीजें वहाँ नहीं हैं।

सात महाशून्यों को लाँघकर कोई भी वहाँ कोई भी अपनी कमाई से नहीं जा सकेगा। इस पर कह रहे हैं—

महाशून्य विषमी घाटी। बिन सतगुरु पावे नहीं बाटी।।

वहाँ रास्ता बिना सद्गुरु के नहीं मिलने वाला है।

एक आदमी सत्यलोक का हाल बता रहा था, कह रहा था कि वहाँ डाइनें हैं, साँप हैं, मुझे काटने को दौड़े। मैं डर गया। उसने कहीं वाणी में यह पड़ा होगा। साहिब ने यह अलंकार से कहा है। कोई डाइनें नहीं हैं वहाँ, कोई साँप नहीं हैं। वहाँ ऐसा भय है मानो भयंकर अजगर हों। वहाँ आकर्षण है। और यह सब सत्य लोक का नहीं, महाशून्य का हाल है। यानी वो गप्प मार रहा था।

बिन देखे उस देश की, बात करे सो कूर।
आप तो खारही खात हैं, बेचत फिरे कपूर।।

तो साहिब ने ऐसे लोक की बात कही, जो अमर है, सत्य है, तीन लोक से परे है, सप्त आकाश से भी परे है। वहाँ कभी प्रलय नहीं है। यदि आत्मा अमर है तो निश्चय ही वो अमर देश ही आत्मा का सही ठिकाना है।

चल हंसा तू देश हमारे, साहिब देत पुकारा है।
सत्य तो केवल अमर लोक है, झूठा सब संसारा है।।

साहिब पुकार-पुकार कर कह गये हैं कि हे बंदे, इस झूठी दुनिया से ऊपर उठ और अपने देश चल। यह देश आत्मा का नहीं है। साहिब की वाणी बार-बार चेता रही है।

चलना तो है दूर मुसाफिर काहे सोवे रे॥

यह आत्मा बड़ी दूर से आई है। यह देश इसका नहीं है। यह संसार काल-पुरुष का देश है। यहाँ पर कुछ भी आत्मा के हित में नहीं है। वो सबको यहाँ पर दुख दे रहा है। लोग अवतारों की महिमा गाते हैं, पर साहिब कह रहे हैं कि वो भी उसी की सीमा में हैं। तीन-लोक में जो भी है, सब काल के दायरे में है।

यह हरदो यहाँ काल पुरुष के है हिजारे।
हर सिम्त व हर जाय में यम जाल पसारे॥

यक लोक व यक वेद दो दरिया के किनारे।
सैयाद के काबू में हैं सब जीव बेचारे॥
चलती है यहाँ तेग व तलवार दो धारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥

कह रहे हैं कि यहाँ सब काल का ही है। हर शै में उसका जाल फैला हुआ है। दुनिया के सब लोग उस क्रूर के काबू में हैं। इसलिए हे हंस! तू हमारे देश में चल। आगे कह रहे हैं—

जब भूल गया आदम को आपही आपा।
पावन्द हुवा तिफली जवानी व बुढ़ापा॥
सबपर है लगा मलिक मौत मोह व छापा।
है आग लगी बेशः जलेगा यह सरापा॥
जलते हैं धोल उड़ते धुवें धार शरीरे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥

कह रहे हैं कि यहाँ सब पर मौत का साया मण्डरा रहा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की आग लगी हुई है, जिसमें सारा संसार जल रहा है। इसलिए इस जलते हुए संसार को छोड़ और हमारे देश में चल।

अफसोस लिया लूट धरम धरमन धूरत।
एक इश्क जदः भई है हुस्न है औरत॥
हर कौन किया भौन है यह मोहिनी मूरत।
दिल पार हुवा पारः बमह पारए सूरत॥
बाजार खड़े मार वा बीमार नजारे।
चल हंस अचल मोलि दो मावाय हमारे॥

यहाँ पर आत्मा का धर्म लूट लिया गया है, उसका लोप हो गया है। यहाँ पर प्रेम करने के लिए एक सुन्दर स्त्री बनी है। सब उसी पर मोहित हो रहे हैं। यहाँ सबको यह रोग लगा हुआ है। इसलिए हे हंस! तू इस संसार को छोड़ और हमारे देश में चल।

कैलास जलेगा व जिनूँ लोक जलेगा।
अमरावती अलकावती गोलोक जलेगा॥
सब स्वर्ग जलेगा व तपोलोक जलेगा।
जो हद्द जनो मर्द में सो लोक जलेगा॥
वो भी जल जावे जहाँ नौलाख सितारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥

यहाँ जो कुछ भी दिख रहे है, एक दिन नष्ट हो जायेगा। स्वर्ग लोक, तप लोक आदि भी नहीं रहेगा। नौ लाख तारे भी नहीं रहेंगे। इसलिए हे अमर हंस! तू इस नश्वर संसार को छोड़कर उस अमर-धाम में चल।

कोई न रहे एक पुरुष लोक रहेगा।
आवे जो वहाँ से सो ख़बर उसकी कहेगा॥
सब कौल कर शमः अजिले सोल बहेगा।
जिसको वह नजर आवे सो फिर कछु न चहेगा॥
निश्चल सो रहे कायक जहाँ अमृतधारे।
चल हंस अचल मोलि दो मावाय हमारे॥

अगर कुछ अमर है, अगर कुछ रहेगा तो वो परम-पुरुष का लोक ही रहेगा और अन्य कुछ भी नहीं रहेगा; सब मिट जायेगा। जो वहाँ से आयेगा, वो उसकी ख़बर कहेगा। जिसको वो नज़र आ गया, फिर वो कुछ न चाहेगा। इसलिए हे हंस! तू उसी देश में चल।

हंसों की हुस्न खूबी कही जाए सो कैसे।
यह नातिकः गुम सुम्म बयां कीजिए ऐसे॥
एक मूय मुनौविर कह इस नूरका जैसे।
छिप जाय करोड़ों महेहुर तलअत तैसे॥
सब हंस पुरुष रूप पुरुष उनको दुलारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥

वहाँ हंसों की सुन्दरता का बखान नहीं किया जा सकता है। करोड़ों सूर्य और चंद्रमा वहाँ के प्रकाश के आगे फीके पड़ जाते हैं। परम-पुरुष वहाँ सब हंसों से प्रेम करते हैं। हे हंस! तू भी वहाँ चल।

जहाँ रात न दिन है व नहीं सूरज चंदा।
सोहंग दुरै चँवर करे पुरुष अनन्दा॥
यक मूरत सारे न खुदावन्द न बन्दा।
इस मंजिल नजदीक नहीं काल का फंदा॥
जिस लोक हमेशा को परमहंस पधारे।
चल हंस अचल मोलि दो मावाय हमारे॥

वहाँ न रात है, न दिन है, न सूर्य है, न चाँद, न कोई खुदा, न बन्दा। सब उसी के रूप हैं। जिस लोक में परमहंसों का आना-जाना लगा रहता है, हे हंस! तू भी उस देश में चल।

सतगुरु की शरण लेके चलो बहके उस पार।
वह कादिर मुतलक हुवा जिस जीव का मददगार॥
कर पल में सुबुक दोष उठा उसका गरां बार।
पहुँचावे वतन में न बुतन में होवे औतार॥
आजिज से गुनहगार कतारों को जो तारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥

हे हंस! सतगुरु की शरण ग्रहण कर, क्योंकि वो ही जीव का सच्चा सहायक है। वो तुझे पल में वहाँ पहुँचा देगा। वो तेरे सब दोषों को मिटाकर तुझे वहाँ ले जायेगा। हे हंस! इस तरह सद्‌गुरु की शरण लेकर उस देश में चल।

साहिब बार-बार कह रहे हैं—

हंसा सुधि करो आपन देश॥
जहाँ से आयो सुधि बिसरायो, चले गयो परदेश॥
वहि देशवा में जोते न बोवै, मोती फिरै हमेश॥

वहि देशवा में मरै न बिगड़ै, दुक्ख न पड़त कलेश॥
चलो हंसा बसो मानसरोवर, मोती चुगो हमेश॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, अजर अमर वह देश॥

वो विद्वानों की समझ से बाहर है, क्योंकि वो वेद-शास्त्रों की सीमा से भी कहीं ऊपर है। वहाँ बुद्धि और कल्पना की पहुँच भी नहीं है। वहाँ जाकर फिर कभी इस मृत्यु लोक में नहीं लौटना है।

इस संसार का हरेक जीव बंधन में है, सब काल को ही परम-पुरुष मानकर पूज रहे हैं।

जो रक्षक तहँ चीन्हत नाहीं। जो भक्षक तहँ ध्यान लगाहीं॥

साहिब धर्मदास से कह रहे हैं—

सुरति लगाए सुनो मम वाणी। छानि लेहु जस जिभ्या छानी॥

जैसे जीभ छानने का काम करती है। होठों पर, दाढ़ों में कुछ भोजन का अंश रह जाता है, तो वो ले आती है। वो केवल स्वाद लेना नहीं जानती है। जिभ्या बड़ी सतर्क है। 32 तेज़ दाँतों के बीच में रहती है; बड़ी सुरक्षा के साथ रह रही है। तो साहिब कह रहे हैं कि जैसे जीभ छानने का काम करती है, तुम भी मेरी बात को छान लेना।

सूक्ष्म गति अति भारी झीनी। ताहि जगत में विरला चीन्ही॥

साहिब कह रहे हैं कि इस बात को संसार में बिरले ही समझ पाते हैं। तुम्हें मेरी बात नयी लगेगी, पहले कभी सुनी नहीं होगी।

आदि अंत हती न माया। उत्पत प्रलय हती न काया॥
शून्य शिखर नहिं तत्वन मूला। कारण सूक्ष्म नहीं अस्थूला॥

पाँचों तत्व भी नहीं थे। कारण, सूक्ष्म और स्थूल—ये तीनों प्रकार की सृष्टियाँ भी नहीं थीं। ये बाद में सृजित हुए। सब सृजित हुआ। जो सृजित है, वो नाशवान है। इसलिए कुछ नहीं रहेगा।

कोई न रहा एक लोक रहेगा।
आया जो वहाँ से, वो ख़बर उसकी कहेगा॥

कारण, सूक्ष्म और स्थूल सृष्टियाँ भी नहीं रहेंगी। ये तीनों भी नित्य नहीं हैं। ये क्या हैं तीन सृष्टियाँ! साहिब कह रहे हैं—

तीन प्रकार की सृष्टि बखानो। प्रथमें ब्रह्म सृष्टि कहि गानो॥
द्वितिये जीवकी सृष्टि कहायौ। तृतिये माया सृष्टि बतायौ॥
ब्रह्म सृष्टि आचिंत प्रमाना। जीव सृष्टि अक्षर ते जाना॥
माया सृष्टि निरंजन करता। सिरजै पोषै पुनि संहरता॥

तीन प्रकार की सृष्टि है। पहली ब्रह्म सृष्टि, दूसरी जीव सृष्टि और तीसरी माया सृष्टि। साहिब कह रहे हैं कि ब्रह्म सृष्टि अचिंत लोक में है। दूसरी जीव सृष्टि अक्षर लोक में है, अक्षर पुरुष उसका कर्त्ता है। तीसरी माया सृष्टि या स्थूल सृष्टि है, जिसका कर्त्ता निरंजन है, जिसमें ये तीन-लोक आते हैं, हम सब आते हैं। यह इस माया सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय करता रहता है।

यह सब तो बाद में बना। ...तो साहिब कह रहे हैं—

आदि ब्रह्म नहीं ओंकारा। नहीं निरंजन नहीं अवतारा॥
दस अवतार न चौबीस रूपा। तब नहिं होता ज्योति स्वरूपा॥

साहिब कह रहे हैं कि तब ओंकार भी नहीं था, निरंजन और अवतार आदि भी नहीं थे। जिसका नाश हो जाए, वो नित्य नहीं है, वो सत्य नहीं है। इसलिए यह सब नहीं था। ये सब बाद में बने। जो भी बनेगा, वो अवश्य मिटेगा। जो मिटने वाला है, वो सत्य नहीं हो सकता है। तो आगे कह रहे हैं—

पुण्य पाप काहू नहिं थापा। सोय ब्रह्म नहिं सोहं जापा॥

सोहं भी नहीं था। कोई तुकबंदी नहीं की है, इसमें सार है। उनकी एक भी बात बेकार की नहीं है। तो आगे कह रहे हैं—

नहिं तब शून्य सुमेर न भारा। कूर्म न शेष धरे अवतारा॥
अक्षर एक न ररंकारा। त्रिगुण रूप है नहीं विस्तारा॥

वाह! धरती के भार को उठाने वाले कूर्म और शेष भी नहीं थे।

अक्षर भी नहीं था, ररंकार भी नहीं था, ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं थे।

शक्ति युक्ति नहीं आदि भवानी। एक होय नहिं ज्ञान अज्ञानी॥

तब आदि भवानी भी नहीं थी।

त्रिकाल में जितने आए, वेद के अनुसार तीन लोक तक की बात की, पर साहिब कह रहे हैं—

वेद चारों नहीं जानत, सत्पुरुष कहानियाँ।
वेद का तब मूल नाहीं। अकथ कथा बखानियाँ॥

सभी धर्म भी निरंजन की बात कर रहे हैं। पर साहिब ने अमर लोक की बात की। यह बड़े दुख का संसार है। कभी कुछ लोग समस्या लेकर आते हैं, कहते हैं कि कृपा करो। मैं कहता हूँ कि ठीक बात है, पर कम-से-कम आत्मा के लिए भी तो सोचो न! यह तो क्षणिक समस्या है। फिर जो बड़ी समस्या है, उसके लिए आदमी नहीं सोच रहा है। कभी भौतिक पदार्थ मिल जाता है, कभी नहीं मिलता है। यह तो आनी-जानी माया है। साहिब ने बड़ी प्यारी बात कही—

कहैं कबीर किसे समझाऊँ, सब जग अँधा।

साहिब कह रहे हैं—

मैं आया संसार में, फिरा गाँव की खोर।
ऐसा बंदा न मिला, जो लीजै फटक पिछौर॥

खोर गलियों को कहते हैं। कह रहे हैं कि गली-गली घूमा, पर आत्मा की प्राप्ति चाहने वाला जीव नहीं मिला।

दुनिया में सिद्धियों वाले बड़े लोग हैं। लोग अपने सांसारिक दुखों के निवारण के लिए वहाँ पहुँच जाते हैं। लोग उन्हीं में उलझे हैं। सिद्ध लोग तो इन शक्तियों को दिखाकर अपना वर्चस्व दिखाते हैं, मान-बढ़ाई के लिए कार्य करते हैं। पर संतों के पास परम-सिद्धी ज्ञान ही है। वो तो सिद्धियों को खाइयाँ मानकर उनको बाईपास करके चलते हैं।

भक्ति करो तो काल-पुरुष सबकुछ दे देता है, सिद्धियाँ बगैरह भी दे देता है। इसलिए भुलेखे में है इंसान। स्वर्गादि लोकों का सुख भी क्षणिक है। कभी देखते हैं कि कुछ दान-पुण्य, कुछ तीर्थ आदि करते हैं। पर इससे समस्या से छुटकारा नहीं मिलने वाला है।

फिरके डार दे भूमाहीं। भू से कोऊ न्यारा नाहीं॥

स्वर्ग में जाकर ही सोच रहे हैं कि आत्मा का कल्याण हो जायेगा। जैसे कुछ माइयाँ नाव द्वारा नदी पार करके सोचती हैं कि भवसागर के पार हो गयीं। कुछ बिना पार किये ही (जब नदी का पानी बहुत कम होता है) नाभिक (मल्लाह) को पार करने का मेहनताना बगैरह देती हैं। वो सोचती हैं कि पार हो गये। इस तरह सत्य का भेद कोई नहीं समझ पाता है।

संतो निरंजन जाल पसारा
स्वर्ग पताल जीव मृत-मंडल, तीन लोक बिस्तारा।
ब्रह्मा बिस्नु सिव प्रगट कियो है, ताहि दियो सिर भारा।।
ठाँव ठाँव तीरथ ब्रत थाप्यो, ठगने को संसारा।

तीर्थ, ब्रत, स्वर्ग लोक आदि सब निरंजन ने संसार को ठगने के लिए जाल फैलाया है। मीरा बाई बड़ा प्यारा कह रही हैं—

खोजत फिरूँ भेद वा घर का, कोऊ न करत बखानी॥

उस सत्य घर का भेद बताने वाला कोई नहीं मिलता है। साहिब कह रहे हैं—

वा घर का भेद संत कोई जाने, जाकी सुरति समोई॥

कह रहे हैं कि कोई-2 संत जानता है।

...... तो जब साहिब ने धर्मदास से ये सब बातें कहीं, अमर लोक की बात बताई तो धर्मदास ने कहा—

अब साहिब मोहि देउ बताई। अमर-लोक सो कहां रहाई॥
कौन द्वीप हंस को वासा। कौन द्वीप पुरुष रह वासा॥

तीन लोक उत्पत्ति भाखो। वर्णहुसकल गोय जनि राखो॥
काल-निरंजन किस विधि भयऊ। कैसे षोडश सुत निर्मयऊ॥
कैसे चार खानि बिस्तारी। कैसे जीव कालवश डारी॥
त्रय देवा कौन विधि भयऊ। कैसे महि आकाश निर्मयऊ॥
चन्द्र सूर्य कहु कैसे भयऊ। कैसे तारागण सब ठयऊ॥
किस विधि भई शरीर की रचना। भाषो साहिब उत्पत्ति बचना॥

हे सहिब ! कृपा करके अब मुझे बताओ कि वह अमर-लोक कहाँ है ? उस अमर-लोक में जीव किस स्थान पर रहते हैं ? तीन लोक की उत्पत्ति कैसे हुई ? काल-पुरूष कैसे हुआ ? सोलह पुत्र कैसे बने ? यह निर्मल आत्मा चार खानियों में कैसे गयी ? आत्माएँ काल-पुरुष के चंगुल में कैसे फँस गयीं ? त्रिदेव कैसे बने ? पृथ्वी और आकाश कैसे बने ? शरीर की रचना कैसे हुई ? हे साहिब ! कृपा करके मुझे सृष्टि की उत्पति का सारा भेद समझाकर कहिए। तब धर्मदास को अधिकारी जानकर कबीर साहिब ने फरमाया-

तब की बात सुनहु धर्मदासा। जब नहिं महि पाताल अकाशा॥
जब नहिं कूर्म बराह और शेषा। जब नहिं शारद गोरि गणेश।
जब नहिं हते निरंजन राया। जिन जीवन कह बांधि झुलाया॥
तैतिस कोटि देवता नाहीं। और अनेक बताऊं काहीं॥
ब्रह्मा विष्णु महेश ने तहिया। शास्त्र वेद पुराण न कहिया॥
तब सब रहे पुरूष के माहीं। ज्यों बट वृक्ष मध्य रह छाहीं॥

हे धर्मदास ! मैं तब की बात कह रहा हूँ, जब धरती और आकाश नहीं थे; जब कूर्म, शेष, बाराह, शरद, गोरी, गणेश आदि कोई भी न था; जब जीवों को कष्ट देने वाला निरंजन भी न था; जब तैतीस करोड़ देवता भी न थे... और अधिक क्या बताऊँ ? ब्रह्मा, विष्णु और महेश न थे। वेद, शास्त्र, पुराण आदि भी न थे। लेकिन वह एक था।

कबीर साहिब कहते हैं कि प्रारम्भ में सत्य-पुरुष गुप्त थे। उनका कोई साथी-संगी नहीं था। वे कभी बने नहीं हैं और न ही मिटेंगे।

जिस किसी वस्तु का सृजन होता है, वह अन्ततः नष्ट भी अवश्य हो जाती है। लेकिन जो परम-पुरुष कभी बना ही नहीं, वह मिट कैसे सकता है! साहिब धर्मदास से कहते हैं कि साकार, निराकार, लोक-लोकान्तर आदि सब बाद में बने; अतः गवाही किसकी दूँ! चारों वेद भी सत्य पुरुष की कहानियाँ नहीं जानते और निराकार अर्थात काल-पुरूष तक की बात ही कहते हैं।

वेद चारों नहीं जानत, सत्य पुरुष कहानियाँ।।

धरती, आकाश, ब्रह्माण्ड, निरंजन, त्रिदेव आदि की उत्पति के विषय में बताते हुए साहिब फरमाते हैं कि सर्वप्रथम परम-पुरुष ने इच्छा करके एक शब्द पुकारा, जिससे एक अद्‌भुत श्वेत रंग का प्रकाश हुआ और वह अद्‌भुत प्रकाश अनन्त में फैल गया। वह प्रकाश सांसारिक प्रकाश की भांति न था, वह इतना अद्‌भुत था की जिसका एक-2 कण करोड़ों सूर्यों को भी लज्जा दे।

जब वह प्रकाश अनन्त में फैल गया तो फिर वे सत्य-पुरुष स्वयं उस प्रकाश में समा गये। अब वह प्रकाश चेतन हो गया, जीवित हो गया। जिस प्रकार आत्मा के शरीर में आने से शरीर चेतन हो जाता है। उसी तरह वह प्रकाश भी जीवित हो उठा।

प्रकाश में आने से पहले वे सत्य-पुरूष अगम थे, गुप्त थे जबकि प्रकाश में आकर ही वे सत्य-पुरुष कहलाए और वह अद्‌भुत प्रकाश, जो स्वयं सत्य-पुरूष ही थे, अमर-लोक कहलाया।

अभी भी सत्य-पुरूष अकेले ही थे। फिर उनकी मौज हुई और उन्होंने उस प्रकाश को अर्थात अपने ही स्वरूप को अपने में से छिटका दिया। अनन्त बिन्दुएँ हुईं, जो वापिस उस अद्‌भुत अनन्त प्रकाश

में आयी। जिस प्रकार समुद्र में से पानी को मुट्ठी में या हाथों में भरकर उछालने से कई कण बिखर जाते हैं, उसी तरह उस प्रकाश में से भी अनेक कण बिखर गये। लेकिन जिस प्रकार समुद्र की बूँदें पुनः समुद्र में गिर, समुद्र का ही रूप हो जाती हैं, उसी तरह वे अनन्त कण भी वापिस उस अद्‌भुत प्रकाश में आए; लेकिन अचरज यह था कि वे बिन्दुएँ जब वापिस प्रकाश में आयीं तो वे प्रकाशमय नहीं हुईं, क्योंकि सत्य-पुरूष ने इच्छा की कि इनका अपना अलग अस्तित्व भी रह जाए। वे ही जीव (आत्माएं) कहलाये। वे सब जीव उसी अद्‌भुत प्रकाश में विचरण करने लगे।

आत्माओं का उस प्रकाश में अलग अस्तित्व के साथ विचरण करना बड़े अचरज की बात थी क्योंकि समुद्र की बूँदों का समुद्र में अपना अलग अस्तित्व नहीं होता। जिस तरह पानी में मछली घूमती रहती है, उसी तरह सब जीव उस प्रकाश में घूमने लगे। ये देख परम-पुरूष बड़े खुश हुए और उन आत्माओं से बहुत प्यार करने लगे। बहुत समय ऐसे व्यतीत हो गया और सभी जीव उस अद्‌भुत प्रकाश में विचरण करते हुए परम-आनन्द लूट रहे थे। **'सदा आनन्द होत है वा घर, कबहु न होत उदासा।'**

वहाँ उस अमर-लोक में आत्मा का प्रकाश 16 सूर्य का है और परम-पुरूष के मात्र एक रोम का प्रकाश ही करोड़ों सूर्य तथा चन्द्रमा को लज्जा देने वाला है। अत: जब परम-पुरूष के एक रोम की ऐसी महिमा है तो फिर वह परम-पुरूष स्वयं कैसा होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

धर्मदास जी यह सुन आश्चर्यचकित हुए, कहा कि कुछ तो बताओ कि कैसा है!

आदि पुरुष के रूप को, कहो मोहि समझाई के ॥

साहिब ने कहा कि पिण्डे के उदाहरण से समझाता हूँ।

प्रथम पुरुष का रूप बखानो। सो तुम रूप हृदय में आनो॥
पुर्ष अंग छवि वर्ण सुनाई। गुप्त भेद मैं तोहि लखाई॥
पुरुष शोभा अगम अपारा। ताको मैं अब बरणो पारा॥
कोटि अनन्त योजन लौ काया। कहाँ लग कहों तासु की छाया॥

कह रहे हैं—अनन्त कोटि योजन तक उसकी काया है। अनन्त कोटि योजन। कोई हज़ार, लाख, करोड़, अरब, खरब, पद्म, नील, संख्य, असंख्य भी नहीं, अनन्त कोटि योजन। संख्य के बाद 10 संख्य आता है, फिर आता है असंख्य। असंख्य यानी जिसकी गणना नहीं की जा सकती है। फिर अनन्त की तो बात ही नहीं की जा सकती है। पर साहिब कह रहे हैं कि एक अनन्त नहीं, कोटि अनन्त। और कोटि अनन्त भी नहीं, कोटि अनन्त योजन की बात कर रहे हैं। इतनी विशाल काया। वास्तव में उसकी कोई काया नहीं है, पर पिण्डे के उदाहरण से समझा रहे हैं। कह रहे हैं—

कछु संक्षेप में देऊँ बताई। कहाँ कहों कछु वर्णि न जाई॥
कोटि अल्प युग जाय सिराई। मुख अनन्त सो वर्णि न जाई॥

कह रहे हैं कि संक्षेप में बताता हूँ, पर वास्तव में अनन्त मुख हों और करोड़ों कल्प तक बोलता रहूँ तो भी उसका वर्णण नहीं कर पाऊँगा।

ये कछु सूक्ष्म रूप लखाऊँ। कछु कछु शोभा वर्ण सुनाऊँ॥
अब मस्तक को वर्णों भेषा। मानों अनन्त भानु शशि लेखा॥
जगर मगर मस्तक उजियारा। वर्णत बनै न रूप अपारा॥

मस्तक ऐसा है, मानो अनन्त सूर्य और चन्द्रमा हों। वो कोई मस्तक नहीं। हमारी कल्पना जहाँ तक जा सकती है, उससे भी परे है। वो। केवल समझाने के लिए पिण्डे का उदाहरण दे रहे हैं। कह रहे हैं कि उसकी जगमगता का वर्णन करके भी नहीं किया जा सकता है।

अब नेत्रन का कहों प्रमाना। मानो अनन्त भान शशि जाना॥

जिमि कोटिन दामिन लपटानी। जोत अनन्त की जिमि खानी॥
वर्णत बने न ताको रंगा। कहाँ लग कहों तास प्रसंगा॥

उसके नेत्र भी मानो अनन्त सूर्य और चन्द्रमा हों; मानों करोड़ों बिजलियाँ लिपटी हुई हों। यह सब वर्णन संभव नहीं। संसार की कोई भी उपमा उसके रूप के वर्णन में समर्थ नहीं, इसलिए कहा कि केवल इशारा दे रहा हूँ, क्योंकि तुम्हें समझाने के लिए मेरे पास यही साधन है।

नासा रूप कहों प्रचण्डा। मानो अग्र अनन्त ब्रह्मण्डा॥
पोहप बास तहँ ते प्रकटाई। घ्राण अनन्त योजन लग जाई॥

नासिका में मानों अनन्त ब्रह्माण्ड हों और वहाँ से निकल रही महक अनन्त योजन तक फैल रही है। ऐसे ही—

श्रवण रूप मैं कहौं बखानी। अनन्त सिंध मानो समानी॥
ता मह कमल अनन्तन फूला। साखा पत्र डार नहिं मूला॥
ताको शोभा वर्णि न जाई। कमल रूप तहाँ अधिक सुहाई॥

कानों में मानों अनन्त समुद्र समाए हुए हों और उनमें अनन्त कमल बिना शाखा, पत्र, डाल और जड़ के खिले हुए हैं। उनकी शोभा वर्णन से परे है। आगे कह रहे हैं—

अब मुख शोभा कहों बखानी। पिण्ड ब्रह्माण्ड तेहि माहिं समानी॥
नौ शून्य जहाँ लग बासा। सो मुख भीतर कीन्ह निवासा॥
लोक अनन्त देखिये ताही। सर्वाकार रूप है जाही॥

नौ शून्य का जहाँ तक बास है, वो सब उसके मुख में हैं। इतना ही नहीं, अनन्त लोक उसके मुख में दीख रहे हैं। फिर उसका वर्णन कैसे हो!

पुर्ष रूप का वर्णों भाई। वर्णन बने न होय ढिठाई॥
पुरुष शोभा अगम अपारा। मुख अनन्त नहीं पावे पारा॥

परम-पुरुष के ऐसे रूप का वर्णन करते नहीं बनता; यह तो केवल ढिठाई ही है। उसकी शोभा तो अथाह है; जिसे अनन्त मुखों से भी नहीं कहा जा सकता है।

चिकुर शोभा कहों बुझाई। कोटि रवि शशि रोम लजाई॥

कोटिन चंद सूर प्रकाशा। एक-एक रोम अनन्तन भासा॥

उसके बालों की शोभा का क्या कहना! एक रोम करोड़ों सूर्य चन्द्रमा को भी लजा देने वाला है। आगे कह रहे हैं—

पुरुष अंग का करौ बखाना। रचना कोटि तातु में जाना॥
श्वेत अकार पुरुष को अंगा। फटकवर्ण देही को रंगा॥
शब्द स्वरूप पुरुष है भाई। वर्णौं कहा वर्ण नहिं जाई॥

करोड़ों रचनाएँ उसकी काया में समायी हुई जानो। **उसकी देह श्वेत और पारदर्शी है।** वहाँ संसार वाली कोई बात नहीं है। वो साहिब तो शब्द और प्रकाश रूप है। वो नि:शब्द शब्द है, केवल उदाहरण देकर समझा रहे हैं। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

जहाँ लग जीव बुन्द है भाई। ताकर भेद कहौं समुझाई॥
हंस अनन्त बुन्द सम जानो। अमी सिन्धु पुरुष पहिचानो॥

अनन्त हंसों को बून्दों के समान जानो और उस परम-पुरुष को अमृत के विशाल समुद्र के समान।

इतना कुछ कहने के बाद भी साहिब एक जगह कह रहे हैं—

जो पहुँचा जानेगा वोही, कहन सुनन से न्यारा है॥

कह रहे हैं कि कहने-सुनने में नहीं आयेगा। यानी संकेत ही दिया है, पर कह नहीं पाया हूँ। इसलिए कह रहे हैं—

धर्मदास समझ के रहना। कहौं कहा कछू नहीं कहना॥

कह रहे हैं कि मेरी बात को समझ लेना, कुछ कहा नहीं जा रहा है।

...... तो आगे धर्मदास फिर पूछ रहे हैं—

विनती करैं कर जोर धर्मन, सुनहु सतगुरु सार हो।
सत्यलोक है कौन शोभा, तहाँ कौन व्योहार हो।।
कौन रूप जो पुरुष रहहीं, कवन सुख हंसा करे।
कामिनी किहि रूप राजै, तहाँ सुख विस्तार हो।।

धर्मदास जी साहिब से पूछ रहे हैं कि सत्यलोक की शोभा कैसी है और वहाँ कैसा व्यवहार होता है? परम-पुरुष का रूप कैसा है? हंसों

को कैसा सुख है? मुझे विस्तार से यह सब कहो।

**कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। सत्यलोक को कहों प्रकासू।।
है सतलोकहि अम्मर काया। एक रूप सबही त्रय माया।।
षोडश भान हंस की क्रांती। अमर चीर पहिरे बहु भांती।।
शोभा पुरुष कही नहिं जाई। कोटिन रवि इक रोम लजाई।।
अमर लोक अमर है काया। अमर पुरुष जहाँ आप रहाया।।
अमर पुरुष का पावै भेदा। कहैं कबीर सों हंस अछेदा।।
सत्यलोक सत्य शब्द पसारा। सत्य नाम है हंस अधारा।।
अमृत फल के भोजन करहीं। युगन युगन की क्षुभ्या हरहीं।।
पीवत सुधा भरम मिट जाई। जन्म जन्म की तृषा बुझाई।।
अनहित वचन बोल नहिं बानी। प्रेम भाव अमृत रसरानी।।
शोभा बहुत जहाँ मन भावन। हंस कामिनी रंग बढ़ावन।।
अमृत नाम हृदय में लावे। प्रेम भाव पुरुषहि मन भावे।।
आशा बस मन कोऊ नाहीं। भयो प्रकाश शब्द के माहीं।।
बूझे संत ज्ञानी जो होई। सतगुरु शब्द हृदय समाई।।
है निहशब्द शब्द सों कहेऊ। ज्ञानी सोई जो वह पद लहेऊ।।
धर्मदास मैं तोहि सुझावा। सार शब्द का भेद बतावा।।
सार शब्द का पावै भेदा। कहैं कबीर सो हंस अछेदा।।
सार शब्द निःअक्षर आहीं। गहै नाम तेहि संशय नाहीं।।
सार शब्द जो प्राणी पावै। सत्यलोक महिं जाय समावै।।**

साहिब कह रहे हैं कि सत्यलोक में सबको अमर काया है, सब एक रूप हैं। वहाँ एक हंस का प्रकाश 16 सूर्यों का है। परम-पुरुष की बड़ी शोभा है। करोड़ों सूर्य उनके एक रोम से लजा जाएँ, ऐसा प्रकाश है। अमर-लोक में सबकी अमर काया है, क्योंकि वहाँ परम-पुरुष स्वयं रहता है। जो उस परम-पुरुष का भेद पा लेता है, वो हंस समान होकर निर्मल हो जाता है। **सत्य-लोक में पहुँचने के लिए जीव को सत्य नाम का ही सहारा है।** वहाँ हंस अमृत फल का भोजन करता है, जिससे युगों

की भूख मिट जाती है। अमृत को पीकर सब भ्रम समाप्त हो जाता है और जन्मों की प्यास भी बुझ जाती है। (वहाँ हंस का भोजन वो परम-पुरुष ही है, जिसमें सब हंस रहते हैं। उसी को अमृत कहा है) वहाँ कोई अनहित शब्द नहीं बोलता है। सब प्रेम भाव से अमृत ही टपकाते हैं। अमृत नाम को प्रेम भाव से हृदय में धारण करके ही उसे पाया जा सकता है। ज्ञानी वही है जो सद्गुरु के शब्द को हृदय में धारण करे। वो नि:शब्द शब्द को हृदय में धारण करके उस पद को प्राप्त कर लेता है। हे धर्मदास, मैंने तुम्हें सार शब्द का भेद बताया। जो इस भेद को जान जाता है, वो हंस समान होकर निर्मल हो जाता है। जो यह सार नाम पा लेता है, वो निश्चय ही सत्य लोक में जाकर निवास कर लेता है।

चेतो हंस चेतो कोई, अगम सँदेसा लाये हो।
हम हैं हजूरी अविगति ब्रह्म के, हंस उबारन आये हो।।
सही छाप सुरति मुख बानी, जग में आनि सुनाये हो।
जीव दुखित देखा संसारा, तेहि कारन पठवाये हो।।
आवागमन में सब जिव अरुझे, इस्थिर घर न पाये हो।
आदि अंत इस्थिर लखावन को, समरथ मोहिं पठाये हो।।
अंडज खानी माया बनाई, पिंडज ब्रह्मा सिरजी हो।
उषमज खानि विष्णु जो कीन्ही, अस्थावर सिव साजी हो।।
ये बटमार भये या जिव के, सबै राखि भरमाई हो।
चेतन अंस पुरुष की भाई, चारो माहिं भुलाई हो।।
बिन सतगुरु कोई पार न पावै, फिरि फिरि योनि भूला हो।
नौ सोहंग परे जिनहीं से, सोई पुरुष निज मूला हो।।
तीन देंह उनहीं से उपजी, कारन सूक्षम स्थूला हो।
कारन देह में सहज सुरति है, औ अंकूर पसारा हो।।
सूक्षम देह में ओहं सोह, इनको ख्याल अपारा हो।
स्थिर देह में अंस है अच्छर, इच्छा उनसे धारा हो।।
ते अच्छर ते जोति निरंजन, सबको करत अहारा हो।

ते जोति में तिन देव लागे, जाकै सृष्टि पसारा हो।।
सात सुन्न दोइ बेसुन कहिये, दसवाँ धाम अखंडा हो।
समरथ सब्द हमरो अस्थाना, और सकल ब्रह्मण्डा हो।।
सोलह सुत तेही के माहीं, तेहि विच पाँचो अंडा हो।
अमर लोक में पुरुष विदेही, निगम न पावै पारा हो।।
उनकी उपमा कहँ लगि बरनौं, मुख तें होय न वारा हो।
कोटिन सूर चंद्र तारागन, एक रोम पर वारा हो।।
सेत सिंघासन सेत छत्र सिर, सेतहि हंस पियारा हो।
सेत भूमि जहँ सेत बृच्छ है, सेतहि कमल सुहेला हो।।
पारस पान लेहु तुम सुकिरित, तब देखो दरबारा हो।
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, तुम से होइ निरधारा हो।।

साहिब वाणी में पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि संसार के जीवों को काल निरंजन द्वारा दिये जाने वाले कष्टों से दुखी देख परम पुरुष का संदेश लेकर वो हंसों को यहाँ ले छुड़ाकर अमर लोक ले जाने के लिए आए हैं। माया ने त्रिदेवों के संग मिल चार खानियों की रचना की और सब जीवों को लूट कर भ्रमित कर दिया। परम पुरुष की अंश चेतन आत्मा चार खानियों में भ्रमित हो गयी। बिना सद्गुरु के कोई भी जीव छूटकर उस लोक में नहीं जा सकता है। वहाँ अमर लोक में विदेही पुरुष रहता है। उसका भेद वेदों में भी नहीं है। मुख से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। करोड़ों सूर्य, चाँद और तारे उसके एक रोम के आगे फीके पड़ जाते हैं। वहाँ सब श्वेत है। सद्गुरु से सार नाम पाकर ही जीव वहाँ पहुँच सकता है।

तहँके गये बहरि न आवे, ऐसा देश हमारा है।
वेद कितेब पार नहीं पावत, कहन सुनन से न्यारा है।।



सृष्टि उत्पत्ति से पहले का रहस्य

धर्मदास पूछते हैं

अब साहब मोहि देउ बताई। अमर-लोक सो कहाँ रहाई।।
कौन द्वीप हंस को बासा। कौन द्वीप पुरुष रह बासा।।
भोजन कौन हंस तहँ करई। औ बानी कहँ तहाँ उच्चरई।।
कैसे पुरुष लोक रच राखा। द्वीपहिं को कैसे अभिलाखा।।
तीन लोक उत्पति भाखो। वर्णहु सकल गोय जनि राखो।।
काल निरंजन किस विधि भयऊ। कैसे षोडश सुत निर्मयऊ।।
कैसे चार खानि विस्तारी। कैसे जीव काल वश डारी।।
कैसे कूर्म शेष उपराजा। कैसे मीन बराहहिं साजा।।
त्रय देवा कौने विधि भयऊ। कैसे महि अकाश निरमऊ।।
चन्द्र सूर्य कहु कैसे भयऊ। कैसे तारागण सब ठयऊ।।
किस विधि भई शरीर की रचना। भाषो साहिब उत्पति बचना।।

हे साहिब! कृपा करके अब मुझे बताओ कि वो अमर लोक कहाँ है ? उस अमर लोक में जीव किस स्थान पर रहते हैं ? वहाँ आत्मा भोजन क्या करती है और वहाँ भाषा कौन सी है ? सब लोक कैसे बने ? तीन-लोक की उत्पत्ति कैसे हुई ? काल-पुरुष कैसे हुआ ? सोलह सुत की रचना कैसे हुई ? यह निर्मल आत्मा चार खानियों में कैसे गयी ? आत्माएँ काल-पुरुष के चंगुल में कैसे फँस गयीं। त्रिदेव कैसे बने ? पृथ्वी और आकाश कैसे बने ? सूर्य, चाँद और तारे आदि कैसे बने ? हे सद्गुरु! कृपा करके सृष्टि का सारा भेद मुझे समझाकर कहिए, जिससे मेरा सब संशय दूर हो।

आदि उत्पति कहो सतगुरु, कृपा करो निज दास को।
बचन सुधा सु प्रकाश कीजै, नाश हो यम त्रास को।।
एक एक विलोय बरनहु, दास मोहि निज जानि कै।
सत्य वक्ता सद्गुरु तुम, लेव निश्चय मैं मानि कै॥

धर्मदास जी प्रार्थना करते हुए कह रहे हैं कि अपने दास पर कृपा करके सृष्टि का सारा भेद समझाकर कहिए। कह रहे हैं कि एक-एक बात अलग-अलग करके बताना; जो भी आप कहेंगे, मैं उसे सत्य मानूँगा, क्योंकि आप झूठ नहीं बोलते हैं।

साहिब कहते हैं

धर्मदास अधिकारी पाया। ताते मैं कहि भेद सुनाया।।
अब तुम सुनहु आदि की बानी। भाखा उत्पति प्रलय निशानी।।

साहिब कह रहे हैं कि जब मुझे अधिकारी जीव मिलते हैं तो मैं यह भेद सुनाता हूँ।

तबकी बात सुनहु धर्मदासा। जब नहिं महि पाताल अकाशा।।
जब नहिं कूर्म बराह औ शेषा। जब नहिं शारद गोरि गणेशा।।
जब नहिं हते निरंजन राया। जिन जीवन कह बाँधि झुलाया।।
तैतिस कोटि देवता नाहीं। और अनेक बताइऊँ काहीं।।
ब्रह्मा विष्णु महेश न तहिया। शास्त्र वेद पुराण न कहिया।।
तब सब रहे पुरुष के माहीं। ज्यों बट वृक्ष मध्य रह छाहीं।।

हे धर्मदास! मैं तब की बात बता रहा हूँ, जब धरती और आकाश नहीं थे; जब कूर्म, शेष, बाराह, शारद, गोरी, गणेश आदि कोई भी नहीं था; जब जीवों को कष्ट देने वाला निरंजन भी नहीं था; जब तैतीस करोड़ देवता भी न थे..... और अधिक क्या बताऊँ ! ब्रह्मा विष्णु और महेश भी न थे, वेद, शास्त्र, पुराण आदि भी न थे..... लेकिन वो एक था और सभी जीव उसमें रहते थे, जैसे बट वृक्ष के मध्य उसकी छाया रहती है।

आदि उत्पति सुनहु धर्मन, कोई न जानत ताहि हो।
सबहिं भो बिस्तार पाछे, साख देउ मैं काहि हो।।
वेद चारों नहिं जानत, सत्य पुरुष कहानियाँ।
वेद को तब मूल नाहीं, अकथ कथा बखानियाँ।।

साहिब ने धर्मदास से कहा कि मैं तुमको आदि उत्पत्ति का रहस्य कहता हूँ, जिसे कोई नहीं जानता है। साकार-निराकार, लोक-लोकान्तर आदि सब बाद में बने, अत: गवाही किसकी दूँ! चारों वेद भी सत्य-पुरुष की कहानियाँ नहीं जानते हैं और निराकार यानी काल-पुरुष की कथाएँ कहते हैं।

सत्य पुरुष जब गुप्त रहाये। कारण करण नहीं निरमाये।।
समपुट कमल रह गुप्त सनेहा। पुहुप माहिं रह पुरुष विदेहा।।
इच्छा कीन्ह अंश उपजाये। हंसन देख हरष बहु पाये।।
प्रथमहिं पुरुष शब्द परकाशा। दीप लोक रचि कीन्ह निवासा।।
चारि कर सिंहासन कीन्हा। तापर पुहुप दीप करु चीन्हा।।
पुरुष कला धरि बैठे जहिया। प्रगटी अगर वासना सहिया।।
सहस अठासी दीप रचि राखा। पुरुष इच्छा तै सब अभिलाखा।।
सबै द्वीप रहु अगर समायी। अगर वासना बहुत सुहायी।।

साहिब कह रहे हैं कि आरम्भ में परम-पुरुष गुप्त थे, उनका न कोई साथी था, न संगी। एक समय उनकी मौज हुई और उन्होंने अंश उत्पन्न किये। सबसे पहले उन्होंने एक शब्द पुकारा, अद्भुत श्वेत प्रकाश उत्पन्न किया और स्वयं उस प्रकाश में समा गये; वो ही अमर-लोक कहाया। फिर उनकी इच्छा हुई और उन्होंने अनेक द्वीपों की रचना की।

वास्तव में यह रहस्य छिपाया गया। मैं बताता हूँ। सर्वप्रथम परम-पुरुष ने इच्छा करके एक शब्द पुकारा, जिससे एक अद्भुत श्वेत रंग का प्रकाश हुआ और वो प्रकाश अनन्त में फैल गया। वो प्रकाश सांसारिक प्रकाश की तरह न था; वो इतना अद्भुत था कि जिसका एक-एक कण करोड़ों सूर्यों को भी लज्जा दे।

जब वो प्रकाश अनन्त में फैल गया तो फिर वे सत्य पुरुष स्वयं उस प्रकाश में समा गये। अब वो प्रकाश चेतन हो गया, जीवित हो गया। जिस प्रकार आत्मा के शरीर में आने से शरीर चेतन हो जाता है, उसी प्रकार वो प्रकाश भी जीवित हो उठा। प्रकाश में आने से पहले वे सत्य-पुरुष गुप्त थे जबकि प्रकाश में आकर ही वे सत्य पुरुष कहलाए और वो अद्‌भुत प्रकाश, जो स्वयं सत्य-पुरुष ही थे, अमर लोक कहलाया।

अभी भी सत्य-पुरुष अकेले ही थे। फिर उनकी मौज हुई और उन्होंने उस प्रकाश को अर्थात अपने ही स्वरूप को अपने में से खिटका दिया।.....अनन्त बिन्दुएँ हुईं, जो वापिस उस अद्‌भुत प्रकाश में आयीं। जिस प्रकार समुद्र में से पानी को मुट्ठी में या हाथों में भरकर उछालने से कई कण बिखर जाते हैं, उसी तरह उस प्रकाश में से भी अनेक कण बिखर गये। लेकिन जिस प्रकार समुद्र की बूँदें पुनः समुद्र में गिर समुद्र का ही रूप हो जाती हैं, उसी तरह वे अनन्त कण भी वापिस उस अद्‌भुत प्रकाश में आए, लेकिन अचरज यह था कि वे बिन्दुएँ जब वापिस प्रकाश में आयीं तो वे प्रकाशमय नहीं हुईं, क्योंकि सत्य-पुरुष ने इच्छा की कि इनका अपना अलग अस्तित्व भी रह जाए। वे ही जीव कहलाए। वे सब जीव उसी अद्‌भुत प्रकाश में विचरण करने लगे।

आत्माओं का उस प्रकाश में अलग अस्तित्व के साथ विचरण करना बड़े अचरज की बात थी, क्योंकि समुद्र की बूँदों का समुद्र में अपना अलग अस्तित्व नहीं होता। जिस प्रकार पानी में मछली घूमती रहती है, उसी तरह सभी जीव उस प्रकाश में घूमने लगे। यह देख परम-पुरुष बड़े खुश हुए और उन आत्माओं को बहुत प्यार करने लगे। बहुत समय ऐसे व्यतीत हो गया और सभी जीव उस अद्‌भुत प्रकाश में विचरण करते हुए परम आनन्द लूट रहे थे। फिर परम-पुरुष ने शब्दों से पुत्र उत्पन्न किये अर्थात जो बोल रहे थे, वो पुत्र बन रहा था।



सोलह सुत की उत्पत्ति

दूजे शब्द जु पुरुष परकासा। निकसे कूर्म चरण गहि आसा।।
तीजे शब्द भयेजु पुरुष उच्चारा। ज्ञान नाम सुत उपजे सारा॥
टेकी चरण सम्मुख ह्वै रहेऊ। आज्ञा पुरुष द्वीप तिन्ह दएऊ॥
चौथे शब्द भये पुनि जबही। विवेक नाम सुत उपजे तबहीं॥
आप पुरुष किये द्वीप निवासा। पंचम शब्द सो तेज परकासा॥
पांचव शब्द जब पुरुष उच्चारा। काल निरंजन भो औतारा॥
तेज अंग ते काल ह्वै आवा। ताते जीवन कह संतावा॥
जीवरा अंश पुरुष का आहीं। आदि अंत कोउ जानत नाहीं॥
छठएँ शब्द पुरुष मुख भाषा। प्रगटे सहज नाम अभिलाषा।।
सतएँ शब्द भयो संतोषा। दीन्हो दीप पुरुष परितोषा।।
अठएँ शब्द पुरुष उच्चारा। सुरति सुभाव दीप बैठारा।।
नवमें शब्द अनंद अपारा। दशएँ शब्द छमा अनुसारा।।
ग्यारहें शब्द नाम निष्कामा। बारहें सब्द सुत जलरंगी नामा।।
तेरहें सब्द अचिन्त सुत जानो। चौदहें शब्द सुत प्रेम बखानो।।
पन्द्रहें शब्द सुत दीन दयाला। सोलहें सब्द भो धीर्य रसाला।।
सत्रहें शब्द सुत योग संतायन। एक नाल षोडश सुत पायन।।

जैसे ही परम-पुरुष ने इच्छा करके दूसरा शब्द पुकारा तो उससे कूर्म उत्पन्न हुआ। इसी तरह तीसरे शब्द से ज्ञान और चौथे से विवेक उत्पन्न हुआ। ये सब परम-पुरुष ने इच्छा से पैदा किए, पर आत्मा इच्छा से नहीं बनी, वो परम-पुरुष का अंश है। फिर परम पुरुष ने पांचवा शब्द तेज अंग से पुकारा। जिसके तेज से निरंजन पैदा हुआ। तो छठे शब्द से सहज की उत्पत्ति हुई, सातवें से संतोष, ग्यारहवें से निष्काम, बारहवें से

जलरंगी, तेरहें से अचिन्त, चौदहें से प्रेम, पन्द्रहवें से दीनदयाल, सोलहवें से धैर्य और सत्रहवें शब्द से योग संतायन हुए। ये सब परम-पुरुष के 16 पुत्र हुए, जिन्हें उन्होंने सुरति की एक नाल से पिरो दिया।

शब्दहिते भयो सुतन अकारा। शब्द ते लोक द्वीप विस्तारा।।
अग्र अमी दिय अंश अहारा। द्वीप द्वीप अंशन बैठारा।।
अंशन शोभा कला अनंता। होत तहाँ सुख सदा बसंता।।
सब सुत करें पुरुष को ध्याना। अमी अहार सदा सुख माना।।

शब्द से ही परम-पुरुष ने पुत्र उत्पन्न किये और शब्द से ही अमर-लोक के द्वीपों की रचना की। हरेक द्वीप पर अंशों को स्थान दिया और सब उस अमृत(परम-पुरुष के स्वरूप) का पान करने लगे। अंशों की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता; वहाँ सदा आनन्द रहता है। सभी पुत्र परम-पुरुष का ध्यान करने लगे और अमृत भोजन करते हुए सुख से रहने लगे।

द्वीप करि को अनंत सोभा, नहिं बरनत सो बनै।
अमिय कला अपार अद्भुत, सुतन शोभा को गनै।।
पुरुष के उजियार से सुत, सबै दीप उजियार हो।
सतपुरुष रोम प्रकाश एकहि, चन्द्र सूर्य करोर हो।।

अमर-लोक के द्वीपों और परम-पुरुष के पुत्रों की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। परम-पुरुष के प्रकाश से सब द्वीप प्रकाशित रहते हैं; उनके एक रोम मात्र का प्रकाश करोड़ों सूर्यों और चन्द्रमा के बराबर है।

सतपुर आनन्द धाम, सोक मोह दुख तहँ नहीं।
हंसन को बिसराम, पुरुष दरस अँचवन सुधा।।

सत्य लोक आनन्द का घर है; वहाँ दुख, मोह आदि नहीं है; वहाँ हंस सत्य पुरुष के अमृत का पान करते हैं।



आओ निरंजन पुरुष और परम पुरुष का भेद जाने

सोलह शब्द पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् सत्य पुरुष का पांचवां पुत्र निरंजन, जिसको निराकार, निरंजन, नारायण, अथवा मन आदि नामों से जाना जाता है जिसे संसारिक लोग राम, ब्रह्मा, आदि निरंजन, कादर, क्रीम, प्रमेश्वर, प्रमात्मा, हरी, हरि, अद्वैत, भगवान, तथा अलख निरंजन आदि नामों से याद करते हैं। इसी निरंजन के ग्रंथ पोथियों में हज़ारों नाम लिखे गए हैं। निरंजन ने 70 युग तक एकागर चित होकर पर्म पुरुष का एक पग पर खड़े होकर ध्यान किया। इस तप से खुश होकर सत्यपुरुष ने निरंजन को मानसरोवर दीप में जाकर रहने को कहा।

इस स्थान पर निरंजन बहुत खुश हुआ और फिर से 70 युग तक एक पग पर खड़े हो कर परम पुरुष का ध्यान किया। परमपुरुष के प्रसन्न होने से निरंजन ने कहा या तो मुझे अमर लोक का राज्य दो नहीं तो अलग से एक न्यारा देश दे दो जिस पर मेरा पूरा अधिकार हो। सत्यपुरुष ने कहा तुम्हें 17 चौंकड़ी असंख्या युग का राज्य देता हूं। अपने बड़े भाई कुरम से बीज लेकर शून्य में एक अलग ब्रह्माँड की रचना बनाओ। निरंजन ने बिनती किए बिना कुरम के तीन सीस काट डाले और उनके पेट से पांच तत्व का बीज छीन लिया। इस तरह निरंजन ने 49 क्रोड़ योजन पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, तारे सप्त पाताल, सप्त लोक आदि सब बना दिये और शून्य में रहने लगा लेकिन वहां जीव नहीं थे, सोचा जीव नहीं तो ब्रह्मांड का क्या लाभ। अत: उसने पुन: 64 युग तक फिर परमपुरुष का ध्यान किया। परम पुरुष ने पूछा

अब क्या चाहते हो ? निरंजन ने कहा जीव ही नहीं है तो राज्य किस पर करुँ। इस लिए कृप्या कर थोड़े से जीव मुझे भी दे दो।

अब परमपुरुष ने आदि शक्ति की उत्पत्ति कर उसे अनन्त आत्मायें देकर कहां हे ! पुत्री मानसरोवर में निरंजन के पास जाओ और मिलकर सत्य सृष्टि करो। पांच तत्वों से बनी रूदर मांस वाली नहीं (यानि आत्माओं को शरीरों में डालने की आज्ञा नहीं दी गई)।

निरंजन आद्या शक्ति का सौंदर्य देख कामुक हो गया तथा उसे निगल गया। यह परमपुरष को बुरा लगा और निरंजन को शाप दे दिया कि तूं एक लाख जीवों को रोज निगलेगा तो भी तेरा पेट नहीं भरेगा और सवा लाख उत्पन्न करेगा मगर तू सत्यलोक नहीं आ सकेगा। तब से इसका नाम काल पुरुष हुआ। सत्य पुरुष ने सोचा निरंजन ने पहले कुर्म के तीन शीश काटे फिर आदि शक्ति को निगल लिया, तो विचार किया कि निरंजन को मिटा देता हूं। सोचा इसे मिटा दिया तो सोलह पुत्र जो एक नाल में हैं वे भी मिट जाएंगे और जो मैंने 17 चौकड़ी असंख्य युग का राज्य दिया है, मेरा शब्द भी कट जाएगा।

परम पुरुष ने अपने को मथ ज्ञानी पुरुष (कबीर साहिब योग जीत) को निकाला वास्तव में वो खुद ही सत्यपुरुष थे और उसे निरंजन की गल्तियां बताकर कहा निरंजन को मानसरोवर से निकाल दो (मानसरोवर अमरलोक का हिस्सा है) तांकि वो सत्यलोक न आ सके। साहिब की आज्ञा से योगजीत ने निरंजन को शून्य में फैंक दिया। वहां निरंजन डर से सम्भल कर उठा तो आदि शक्ति परमपुरुष का ध्यान कर उसके पेट से बाहर आ गई और निरंजन को देख डरने लगी।

अब निरंजन ने आदि शक्ति को प्यार से कहा मैं पाप पुन्य से नहीं डरता मेरे से इसका हिसाब लेने वाला कोई नहीं मैं आगे भी पाप पुन्य

कर्मों का जाल ही बिछाऊंगा, मुझ से मत डरो। परमपुरुष ने तुम्हे मेरे लिए रचा है। आठ भुजाओं वाली आदि शक्ति काल निरंजन के साथ सहमत हो गई और दोनों एक साथ रहने लगे, जिस से इनके तीन पुत्र ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी पैदा हुए।

निरंजन ने आद्या शक्ति को कहा जीव और बीज तुम्हारे पास है और तीनों पुत्र भी सौंपता हूं। मैं शून्य में निराकार रूप में समाऊंगा और मन बन कर सभी जीवों के साथ रहूंगा। मेरा भेद किसी को नहीं देना। मेरा कोई दर्शन नहीं कर सकेगा, चाहे खोजते खोजते जन्म गवादे। तुमने तीनों पुत्रों के साथ राज्य करना। जब यह बड़े होंगे तो समन्दर मन्थन के लिए भेजना।

यहाँ नोट करने वाली बात यह है कि काल निरंजन ने आद्या शक्ति को परमपुरुष का भेद छुपाने के लिए आपने साथ मिला लिया और भी देखे तो निरंजन ने आद्या शक्ति को चार खानि व 84 लाख जूनिया कैसे बनाना है इसका पूरा भेद बताकर शून्य में समा गया और कहा मैं मन रूप में हर जीव के साथ रहुँगा है ताकि कोई भी जीव परम पुरुष का भेद न जान पाये।

बच्चे बड़े हुए तो माता आद्या शक्ति ने तीनों पुत्रों को समुन्दर मन्थन के लिए भेजा। इतने में काल निरंजन ने तमाशा किया स्वांस द्वारा पवन में वेद उत्पन्न किये। निरंजन ने वायु में वेद के शब्द किए कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। इस लिए वेद निराकार तक की बात कहता है। वेद उसका पूरा भेद नहीं बता रहा है। **समुन्दर मन्थन के बाद ब्रह्मा को वेद, विष्णु को तेज और शिवजी को विष** मिला। माता ने कहा जो जो तीनों को मिला है अपने पास रख लें।

कबीर साहिब धर्मदास को बता रहे हैं के अब आदि शक्ति ने

पुनः तीनों पुत्रों को समुद्र मन्थन के लिए भेजा तो इतने में आद्या शक्ति ने तीन कन्याओं की उत्पत्ति कर समुद्र में समाने को कहा। जब समुद्र मन्थन हुआ तो तीनों को तीन कन्याएँ मिली। माता पास आए तो माता ने सावित्री ब्रह्मा जी को, लक्ष्मी विष्णु जी को और पार्वती शंकर जी को दे दी। तीनों भाई बड़े खुश हुए तीनों काम के वशीभूत उनमें रम गए। ऐसे में दैत्यों, देवताओं और राक्षसों की उत्पत्ति हुई। जगत की रचना शुरु हो गई।

ऐका माई जुगति वियाई तिनि चेले परवान।

एकु संसारी एकु भंडारी, एक लाये दिवान॥

सृष्टि रचना के लिए तीनों को अलग-अलग डिउटी दी गई। ब्रह्मा जी को उत्पत्ति करने की, विषणु जी को पालनकर्ता की और शिवजी को संहारकर्त्ता का काम सोंपा गया। इसके आगे तेंतिस करोड़ देवी देवता जिनकी संसार किसी न किसी रूप में पूज रहा है यह सारा निरंजन का परिवार हुआ।

आओ, पाँच भोतिक तत्वों में से इसके अस्तित्व को देखें। चार तत्व तो हमें खुली आंखों से नजर आ रहे हैं लेकिन जो पांचवां तत्व आकाश तत्व है वह चारों तत्वों में रमा हुआ है, यह ही निरंजन है।

84 लाख योनियों में से जिस इंसानी देह को निरंजन ने अपने आप जैसा बनाया है, जिसको हरी मंदिर भी कहते हैं उसमें भी पांचवां तत्व जो आकाश तत्व है वहीं काल पुरुष है। जो सभी शरीरों में मन रूप में रहता है। जब के जीव आत्मा का इस निरंजन के किसी भी देश, देवी, देवता व शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो निरंजन ने जीव आत्मा को रोकने के लिए 84 लाख किस्मों के कैद खाने बनाए हैं। जीव आत्मा जो सत्य पुरुष की अंश है यह बिना बाती और तेल के जलती है, यह बिना आंख के देखती है, बिना पांव चलती है, बिना कानों के सुनती है, इसे कोई काट नहीं सकता, इसे किसी का डर नहीं है। यह निडर है। इसका कभी भी अंत नहीं हो सकता।

शरीर रूपी कैद खानों से आत्मा को आज़ाद करवाने के लिए पूर्ण संत सद्गुरू से विदेह नाम लेना पड़ेगा। बिना विदेह नाम के जीव आत्मा सन्तलोक नहीं जा सकती।

निरंजन ने जिस बीज रुपी पाँच शब्दों से पांच तत्व के शरीर की रचना की उन शब्दों का स्थान भी शरीर में रख दिया। जिसे काया का नाम कहते हैं। **जीव आत्मा को सत्य पुरुष से दूर रखने के लिए काल निरंजन ने जीवों को अपनी भक्ति में लगाने के लिए काया नाम के प्रगट शब्द गुरु मंत्र के रुप में जीवों को दीये जिसमें सभी जीव काया के नाम का सिमरन करने लगे और अन्दर में खोज करने लगे। बड़े-बड़े ऋषी, मुनि, सिद्ध, साथक, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पीर, पैगम्बर, औलिया भी इन शब्दों में उलझ गये। निरंजन ने इस भक्ति से जीव को बड़ी-बड़ी शक्तिया, रिद्ध, सिद्ध, पावर, चार तरहा की मुक्ती का स्वर्ग दे दिया, यहां तक के सभी साधक निरंजन भगवान् की साधना में रम गए और 70 प्रकार की अनहद धुनों में आनन्द मगन रहने लगे और चुप्प रह कर अनहद धुनों का रस लेने के लिए एकांत की तालाश में रहे** और शरीर के किसी न किसी बिन्दू पर ध्यान रोकने लगे, मगर आत्मा का ज्ञान न हुआ ऐसे में आत्मा शरीर से अलग ना हो कर अमर लोक अपने निज धाम न जा सकी।

—विसथार के लिए देखें पुस्तक अनुराग सागर वाणी

पुरुष हमारा एक है

गुरु की बात आती है तो कुछ लोग कहते हैं कि एक गुरु किया है तो अब उसे छोड़कर दूसरे के पास जाना तो अपने पति को छोड़कर दूसरे पति के पास जाना हुआ। यहाँ पर विचार करें कि क्या आप अपने पति (सच्चे परमात्मा , साहिब) की भक्ति कर रहे हैं या पराए की! साहिब ने त्रिदेव, सिद्ध, मुनि, निराकार, ब्रह्म, साकार ईश्वर, ओम हरी, हरि, भगवान अथवा सगुण भक्ति (वर्णनात्मिक शब्द) और निर्गुण भक्ति (धुनात्मिक शब्द) आदि सबसे परे बता दिया। यह भक्तियां तो काल के दायरे में रही साहिब कबीर जी ने इन सबसे परे बता दिया। इनमें से किसी को भी जीव का अपना सच्चा पति नहीं कहा। इसका मतलब है कि दुनिया सच्चे पति की भक्ति नहीं कर रही है और जो गुरु पराए पति की ओर ले जा रहा है, जो उसे उसके प्रियतम से नहीं मिला सकता है, उसी की शरण में रहना चाहती है, उसे छोड़कर सच्चे गुरु के पास नहीं आना चाहती है और कहती है कि अपने पति को छोड़कर दूसरे के पास नहीं जाना है। अपना पति कौन है, यही मालूम नहीं है। यहीं पर भूल हो रही है। बाकी यह कहना कि अपने पति को छोड़कर पराए पति की तरफ नहीं जाना है, यह बात तो बड़ी अच्छी है। पर सत्य यह है कि अपने पति को नहीं पहचान पा रही है। दादू दयाल तो कह रहे हैं—

पुरुष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग॥

एक परम–पुरुष रूपी सच्चे पति को कोई नहीं जान पा रहा। तभी साहिब ने कहा—**जब तक गुरु मिले नहीं साँचा। तब तक गुरु करो दस पाँचा॥**

अनहद भी मर जाय

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरति समानी शब्द में, वाको काल न खाय।।

जो उच्चारण का विषय हो गाय, वो नष्ट हो जायेगा। मुख से जिन राम, शाम आदि शब्दों का उच्चारण हम कर रहे हैं, उनकी उत्पत्ति वायु के शरीर के विभिन्न अवयवों से टकराने से होती है। कहीं जिह्वा दाँतों को स्पर्श करती है और वायु झटके से बाहर निकलती है, कहीं मुख संकर्ण होता है और वायु रगड़ खाती हुई निकलती है यानी दो चीजों के टकराने से शब्द उत्पन्न हुआ। जहाँ द्वैत आ गया, वहाँ तो माया है, इसलिए 'जाप मरे'। फिर अजपा यानी जिसका जाप बिना उच्चरण किये मुँह में होता रहे, सहज ही ध्वनि होती रहे। इसे मानसिक जाप कहते हैं। इसलिए अजपा भी मरे। फिर अनहद घट के भीतर होने वाले शब्द हैं। घट के भीतर भी अनेक बाजे बज रहे हैं, पर वहाँ भी दो चीजों का टकराव है, तभी कहीं मुरली की, कहीं शंख की, कहीं नगाड़े की, कहीं सितार की ध्वनि हो रही है। जो बाहर है, वो भीतर है। न शंख स्वयं बजता है, न मुरली। हवा का स्पर्श चाहिए। मुँह से हवा फूँकनी पड़ती है, तभी ये स्वर उत्पन्न होते हैं। यहाँ भी दो का टकराव आ गया, इसलिए 'अनहद भी मर जाए'। विचार करने होगा, क्योंकि–

बिना ज्ञान नहिं भक्ति है, ज्ञान भक्ति का प्राण।
वीतराग में भक्ति है, भक्ति न हो अज्ञान।।
बिना ज्ञान भक्ति करे, सो अंधा जग जीव।
भक्ति तत्व नहिं समझ है, क्यों कर पावे पीव।।

फिर वो शब्द कुछ और है, जिसका जिक्र साहिब ने अपनी वाणी में किया है। वो दो वस्तुओं के टकराव से उत्पन्न होने वाला शब्द नहीं है। वो ध्वनि रहति शब्द है। उसे नि:शब्द शब्द कहा गया। उसमें प्रकाश भी है, पर वो प्रकाश सांसारिक नही है......बड़ा अद्‌भुत है। वहाँ द्वैत नहीं।

स्वतः सहज वह शब्द है, सार सब्द कह सोय।
सब शब्दों में शब्द है, सबका कारण सोय।।
प्रकृति पार वह शब्द है, अगम अचिंत अपार।
अनुभव सहज समाधि में, अज गुरु चरण अधार।।
मन वाणी से पार है, साहिब शब्द स्वरूप।
योग ज्ञान गम्य सत्य को, दर्शित पुरुष अनूप।।

वो शून्य के पार हो उठता है। ध्यान भजन में कभी आपकी रूह को वो शब्द उठाना चाहता है। वो शून्य पार से आता है। पर वो ऐसे नहीं आता है। जब भाव बनता है, जब आप न जाग्रत में होते हैं, न स्वप्न में, एक मध्यावस्था होती है। जैसे ही आप जाग्रत में आए, अपने का बोध हुआ तो वो चला जाता है। आप अपने को भूल जाते हैं एक क्षण के लिए, तब वो आ जाता है। वो एक डोर है, जिसे पकड़कर आप इस काया से बाहर निकल सकते हैं......बड़ी आसानी से। सद्‌गुरु ने डोर फेंकी हुई है। बस, आपको उसे पकड़ना है। आप पकड़ें नहीं तो सद्‌गुरु का क्या दोष। फिर वो कुछ नहीं कर सकता है।

भृंगा कीड़े को पकड़कर अपना शब्द सुनाता है। कीड़े को केवल सुनना है वो शब्द। यदि न सुने तो काम नहीं बनता। इसका मतलब है, भृंगा तब तक उसे अपने समान नहीं कर सकता, जब तक वो शब्द न सुन ले। सुनाने वाला भृंगा है। कीड़े को कुछ नहीं करना है, बस शब्द सुन ले। भवसागर से निकालने के वाला सद्‌गुरु है। उसने शब्द की डेर फेंक दी है। आपको केवल उसे पकड़ना है। यदि कीड़ा उसका शब्द न सुने तो

भृंगा उठकर चला जाता है। फिर घूमकर आता है, फिर प्रयास करता है। यदि फिर भी न सुने तो फिर थोड़ा घूमकर पुनः आता है, शब्द सुनाने लगता है। यदि वो तब भी न सुने तो फिर उठकर चला जता है। अब वापिस नहीं आता, उसे छोड़ देता है और दूसरे कीड़े को पकड़ लाता है। फिर वही प्रयास अब उसके साथ करता है। जिस कीड़े ने वो शब्द सुन लिया, वो उसकी तरह हो जाता है। केवल तीन शब्द में भृंगा कीड़े को अपने समान कर लेता है। वैसे कीड़े में उड़ने की क्षमता नहीं है, पर जब वो शब्द सुन लेता है तो वो उसकी तरह ही उड़ना शुरू हो जाता है..........बड़ी तेज। यदि आपने भी उस शब्द को पकड़ लिया तो आपको भी उसकी तरह ही उड़ने की कला आ जायेगी। इसलिए एकाग्र रहना है, जरा सा भी ध्यान इधर उधर नहीं हो, अपने आप ही सुधि भूल जाओ। उस शब्द के एक पल के ध्यान की किसी से समानता नहीं की जा सकती है, किसी जप तप से नहीं।

करोड़ों कल्प काशी में रहने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल आधा क्षण शब्द का ध्यान करने से मिल जाता है, ऐसा शास्त्र कह रहे हैं–

कल्पकोटिसहस्राणि काशीवासे चयत्फलम्।
क्षणार्द्धं चिंतिते शब्दे भवेत्तस्य ततोधिकम्।।

सहस्र चौकड़ी युग का एक कल्प होता है। सोचो, कितनी महिमा है उस शब्द की।

सुरति निरंतर शब्द में, लगन मगन रह जोय।
और दृश्य भासे नहीं, भक्ति कहावे सोय।।

शब्द में सुरति को लगाने की जरूरत है। सुरति को शब्द में समा देना है।

काल फिरै सिर ऊपरे, जीवहि नजर न आय।
कहैं कबीर गुरु शब्द गहि, जम से जीव बचाय।।
लोहा चुम्बक प्रीत है, लोहा लेत उठाय।

ऐसा शब्द कबीर का, काल ते लेत छुड़ाय।।
यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं ऊबरै, केता करै उपाय।।

जैसे मृगा बाँसुरी की धुन से प्रेम करता है, वैसे ही शब्द से प्रीत करनी है।

मृग चकोर की रीति से, शब्द में दृष्टि लगाव।
गुरु प्रदेश सुरति भई, अनुभव गम्य न पाव।।

ऐसे में शब्द रूह को चुम्बक की तरह उठाकर अपने में समा लेगा और उड़ चलेगा अपने देश की ओर। उसे ही प्रथम अवस्था की विहंगम साधना कहा गया।

चला जब लोक को, शोक सब त्यागिया,
हंस का रूप सद्गुरु बनाई।
भृंग ज्यों कीट को, पलट भृंगी करे,
आप संग रंग ले, ले उड़ाई।।

तीन तरह से साधना होती है। एक है पपील मार्ग, दूसरा है मीन मार्ग और तीसरा है विहंगम मार्ग। पपील चींटी को कहते हैं। इसमें साधक ध्यान द्वारा धीरे धीरे ऊपर उठता जाता है। यह पैदल यात्रा के समान है। दूसरा, मीन मछली को कहते हैं। जैसे मछली पानी के सहारे ऊपर की ओर चढ़ जाती है, ऐसे ही इसमें आंतरिक शब्दों के सहेर सुरति ऊपर की ओर चलती है। तीसरा, विहंग पक्षी को कहते हैं। इसमें पक्षी को तरह जहाँ चाहो, उड़ चलना होता है। इसमें रूह शब्द में समा जाती है और उसमें बैठ यात्रा करती है। यह गति बहुत तेज होती है। अरबों मील एक सैकेंड में आत्म सफर तय करती है।

गति विहंग न्यारा चले, प्रकृति अल्प भू ज्ञान।
निराधार वह ऊड़ता, ज्यों जग में व्योमयान।।

जहाज के मुसाफिर की तरह शब्द में उड़ती हुई आत्मा अपने देश

की ओर चल पड़ती है।

यह शब्द भी तीन प्रकार का है। एक तो ऊपर से ही खींचकर चल पड़ेगा, लगेगा कि कोई खींच रहा है। दूसरा, जो कान के रास्ते से धीरे धीरे अन्दर आ जायेगा। इन दोनों में सुरति रूहानी चक्कर काटकर वापिस आ जायेगी। यदि ध्यान बराबर शब्द में रहा तो सुरति अमर लोक तक भी पहुँच जायेगी। फिर तीसरा, जो धूँ-धूँ करता हुआ आयेगा और आत्मा को शरीर से पूरी तरह से निकालकर ऐसे बाहर कर लेगा, जैसे कपड़ा निचौड़कर पानी निकालते हैं। उस समय मन भयभीत करेगा, डरायेगा कि अब तो मर गये। वो एक क्षण का समय भयानक लगेगा। बस, यही वो क्षण है, यदि डर गये तो वो छोड़ देगा, बलात नहीं ले जायेगा। पर यदि न डरे तो वो सीधा अमर लोक ले जायेगा, क्योंकि वो आता ही इसलिए है। उसी शब्द के अन्दर साहिब का वास है। जब सद्गुरु की कृपा होती है, तभी वो आता है अन्यथा करोडों साल बैठे रहने से वो नहीं आने वाला।

परम पुरुष अरु काल के, मध्य में सतगुरु धाम।
शब्द की डोर धराय कर, देवैं अविचल नाम।।

शब्द की डोर पकड़ाने वाला सद्गुरु ही है। तो वो शब्द आत्मा को अपने में बिठा चल पड़ता है। उसमें बैठ आत्मा सब नजारे देखती चलती है राह के। वो शब्द पारदर्शी है और आत्मा सब ओर से देख सकती है। तो सोचे, कल्पना से परे है वो आनन्द। फिर थोड़ी दूर पहुँचने पर वो शब्द बातें भी करने लगता है। उस आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है। ऐसे साधक की वाणी मौन हो जाती है। वो वाणी का विषय ही नहीं है। वो नि:शब्द है, तो किसकी मजाल है कि उसका वर्णन कर सके। जो उसका वर्णन करने की चेष्टा करता है, उसने उसका अनुभव ही नहीं किया होता।

जो सुने सो कहे नहीं, कहे सो सुनता नाहीं।

बस, उसकी ओर केवल इशारा ही किया जा सकता है, पर न तो उस आनन्द का वर्णन किया जा सकता है और न उसके रूप-आकार का।

.....तो बातें करता हुआ वो शब्द ब्रह्माण्ड को चीरते हुए साहिब के दरबार में ले चलता है।

सुरति शब्द में जोरते, खुले गगन किवाड़।
जगमग जगमग हो रहा, परम पुरुष दरबार।।



1. अनहद की धुन भँवरगुफा में, अति घनघोर मचाया है।
बाजे बजे अनेक भांति के, सुनि के मन ललचाया है।।
...।
यह सब काल जाल को फँदा, मन कल्पित ठहराया है।।

2. तहाँ अनहद की घोर शब्द झनकार है।
लग रहे सिद्ध साधु न पावत पार है।।

3. मन ही निराकार निरंजन जानिए।।

4. ज्योति निरंजन लग काल पसारा।
मन माया भई किया सृष्टि विस्तारा।।

5. बिना जाने जो नर भक्ति करई।
सो नहीं भवसागर से तरई।।

6. मन ही सरूपी देव निरंजन तोहि रहा भरमाई।
हे हंसा तू अमर लोक का, पड़ा काल बस आई।।

7. तीन लोक जो काल सितावे। ताको सब जग ध्यान लगावे।।
निराकार जो वेद बखाने। सोई काल कोई मरम न जानै।।

मेरी बात को सत्य मानना

जो वस्तु मेरे पास है, वो ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है। यह बात अहंकार से नहीं बोल रहा हूँ। इसमें कहीं भी अहंकार की बात नहीं है। यह अलग बात है कि लोग अपनी समझ से इसका कैसा भी अर्थ लगाएँ। पर यह बात बड़े गहरे विश्वास के साथ बोल रहा हूँ। यह अहंकार से नहीं बोल रहा हूँ। अहंकार से बड़ा परहेज करता हूँ। मेरा मानना है कि जैसे शरीर को कैंसर खा जाता है, इसी तरह अहंकार ज्ञान को खा जाता है। कितना भी ज्ञानी हो, अहंकार उसे ख़त्म कर देगा। इसलिए मैं अहंकार से नहीं बोल रहा हूँ। यह बात सत्य बोल रहा हूँ। मैं इस बात की पुष्टि कर सकता हूँ।

सत्य मानना, मैं अहंकार से नहीं बोल रहा हूँ। मैं यह बात विचार करके बोल रहा हूँ, मैं यह बात विवेक से बोल रहा हूँ,मैं यह बात ज्ञान से बोल रहा हूँ। मैं इन शब्दों को प्रमाणित कर सकता हूँ।

हम अपने आस-पास में नाना मत-मतान्तर देख रहे हैं। अगर ईमानदारी से देखें तो पता चलेगा कि 70 प्रतिशत माँस, शराब का इस्तेमाल करते हैं। हालांकि वो भक्ति की बात भी कर रहे हैं, हालांकि वो संत-मत की बात भी बोल रहे हैं, पर उनका खान-पान ठीक नहीं है, उनकी आचार-संहिता भी ठीक नहीं है, कर्म से भी वो उत्तम नहीं हैं। बहुत डाउन हैं वे। आप खान-पान में भी बेहतरीन हैं और कर्म से भी बड़ा अन्तर है। वो छल, कपट, धोखा आदि कर रहे हैं, लेकिन आपकी ज़िंदगी एक स्थिर जिंदगी है। आप चाहकर भी ग़लत नहीं कर पाते हैं। जैसे ही करने जाते हैं, एक शक्ति आपको सतर्क करती है, आपको सावधान करती है। यह प्रासंगिक बदलाव हरेक नामी की ज़िंदगी में

दिखाई देता है। और फिर सुरक्षा के मामले में भी आप लाजवाब हैं। ज्ञान के मामले में भी आप परम-ज्ञानी हैं। क्या करने योग्य है, क्या नहीं करने योग्य है, यह भी आपको समझाने की ज़रूरत नहीं है। जैसे ही आप कोई ग़लती करने जाते हैं, अन्दर से एक प्रेरणा मिलती है, आपको वो ताक़त चेतन करती है, बताती है कि यह न किया जाए। यह ज्ञान आपके पास है। आप महसूस करते हैं। भक्ति-क्षेत्र में आप अनूठे हैं। जब आप अन्य मत-मतान्तरों की तरफ देखते हैं तो एक बात का पता चलता है कि कभी वे भैरो को मानते हैं, कभी काली जी को मानते हैं, कभी कुछ करते हैं। इसका बोध मिलता है, इसकी जानकारी मिलती है। वे भ्रम में हैं; वे अनिश्चित हैं। आपको इसका ज्ञान है कि दुष्टात्माएँ कैसे व्यवधान डालती हैं। आपको इसका बोध हो जाता होगा।

आप भक्ति में मजबूत हैं। आप दुनिया से निराले हैं। दुनिया का हरेक आदमी मन के नशे में है, मन की पकड़ में है। हरेक को मन, जैसे चाहे, नचाता है, पर आप मुक्त हैं। आपके ऊपर मन का ज़ोर नहीं चल पाता है। साहिब कह तो रहे हैं—

नाम होय तो माथ नमावे। ना तो यह जग बाँध नचावे॥

निःसंदेह इस मन का कोई ज़ोर आपपर नहीं चल रहा है। मन बेबस है। पूरी दुनिया को यह नचा रहा है। एक नशा-सा मन का सबके ऊपर है। माया का एक नशा-सा सबके ऊपर छाया है। पर आप मन की पकड़ से आज़ाद हैं। मन का नशा छाता है तो काम, क्रोध आदि जाग्रत होते हैं। ये चीज़ें आपमें भी हैं, पर आपके पूरे कण्ट्रोल में हैं। आपका ये चीज़ें कुछ नहीं बिगाड़ पा रही हैं। आपमें आध्यात्मिक शक्ति भरपूर है। आपके पंथ में लाजवाब शक्तियाँ हैं। आप मन, कर्म, वचन से किसी को पीड़ा नहीं देने वाले, अन्दर से शांत और सुखी हैं। एक ताक़त आपको प्रेरित कर रही है। आप पूरे सुरक्षित हैं। भूत-प्रेत आपके पास नहीं आ पा रहे हैं। आपके पास आना तो दूर, यदि आप किसी ऐसे ग़ैरनामी के

पास बैठकर नाम करेंगे जिसके पास में भूत होगा तो वहाँ से भी भाग जायेगा। आपपर कोई जादू, टोना, सिद्धि ताक़त प्रभाव नहीं डाल पा रही है।

मेरा मानना है कि साहिब एक बात की अनुभूति दिलाता है। जीवन में एक बार, दो बार या कई बार, पर दिलाता है। यह काम साहिब खुद करता है। एक बार धर्मदास जी उदास हो गये। साहिब अपनी जगह धर्मदास को देकर जा रहे थे। धर्मदास ने कहा कि काल-पुरुष में जान है; सबको भ्रमित कर दिया; मुझसे कैसे होगा? लोगों को भक्ति में कैसे जोड़ूँगा? साहिब ने कहा कि चिंता मत कर।

पुरुष शक्ति जब आन समाई। तब नहीं रोके काल कसाई॥

कहा कि जब परम-पुरुष की ताक़त आकर समायेगी तो काल कुछ नहीं कर पायेगा। जिस दिन नाम मिलता है उस दिन परम-पुरुष की ताक़त आकर समाती है। तब काल का ज़ोर नहीं चलता है।

आप इन बातों पर मनन करें। इनमें से कितनी बातें आपके साथ में हो रही हैं। यह आपसे बेहतर कोई नहीं जान सकता है। आपके साथ में एक ताक़त है, यह मेरी वाणी से अधिक आप स्वयं जान सकते हैं। मुझे आपको कुछ समझाने की ज़रूरत ही नहीं है। मेरी वाइब्रेशन ही आपको समझा देगी। सत्संग में बैठकर उलटी गिनती गिनूँगा तो भी समझ आ जायेगी और आप कभी बोर भी नहीं होंगे। वाणी से समझाना तो एक बहाना है। रावण का दिल बदला ही नहीं। राम जी थे। दुर्योधन का दिल बदला ही नहीं। कृष्ण जी थे। पर साहिब कह रहे हैं—

सतगुरु मोर रंगरेज, चुनरि मोरी रंग डारी॥

यह काम बड़ा मुश्किल है। इस पंथ में आने में रुकावटे हैं कुछ। निरंजन रुकावटें डालता है। मेरे लिए लोग जो-जो भी कह रहे हैं, अच्छा ही कह रहे हैं, ठीक ही कह रहे हैं। केवल अपनी शैली बदल रहे हैं। मैं सब चीज़ सकारात्मक लेता हूँ। मैं नकारात्मक में जाता ही नहीं हूँ।

कुछ लोग कह रहे हैं कि इसके पास हिप्नोटिज्म है। इससे उच्चाटन किया जाता है। सही तो कह रहे हैं। जो वस्तु मेरे पास है, वो किसी के पास नहीं है। पर वो हिप्नोटिज्म कह रहे हैं। संतों के शरीर से अध्यात्म किरणें निकलती हैं; वो जगाती हैं। तो उन्हें यह हिप्नोटिज्म लग रहा है। फिर दूसरा कह रहे हैं कि धर्म बदल देता है। यह भी सही है। दुनिया निरंजन के धर्म का पालन कर रही है, मैं परम-पुरुष के धर्म की ओर ले चल रहा हूँ। मैं कुछ भी नकारात्मक नहीं ले रहा हूँ। मैं उनकी बातों को ठीक-ठीक मान रहा हूँ।

तो आपका बदलाव मामूली नहीं है। आप दुनिया से निराले हैं। आपके खोटे कर्मों को निकाला गया है। अगर गुरु चेले की ग़लती बोलने में झिझक रहा है तो समझना कि वो गुरु मर चुका है। मैं उदण्ड नहीं हूँ, पर आप यह नहीं सोचना कि आप ग़लती करें और मैं कुछ न कहूँ। यह नहीं सोचना।

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सम्हार दे, बाहर बाहै चोट॥

आपमें जो बदलाव है, वो मामूली नहीं है। आप दुनिया से निराले हैं। जो काम आपसे नहीं संभलने वाला होता है, उसमें एक ताक़त आकर आपको मदद दे जाती है। वो एहसास करवाती है कि साथ में हूँ।

मैंने जो कहा कि जो वस्तु मेरे पास है, वो ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है, प्रमाणित करता हूँ। पूर्ण गुरु आपको बदल देता है, दिव्य-दृष्टि खोल देता है। 10वाँ द्वार खुलता है तो चाँद, तारे आदि नज़र आते हैं, पर जब 11वाँ द्वार खुलता है तो मन नज़र आता है।

वो दिव्य-दृष्टि खुलेगी तो काम, क्रोध दिखेगा। अन्यथा कितनी भी तपस्या करना, यह मन काबू में नहीं आयेगा, यह समझ नहीं आयेगा। कपिल मुनि, पाराशर ऋषि आदि ने कम तप नहीं किया था। पर नहीं हो सका मन काबू में। इसलिए—

नाम होय तो माथ नमावे। ना तो यह मन बाँध नचावे॥

जब पूर्ण गुरु एक ताक़त रोपित कर देता है तो अन्दर का पूरा खेल दिखने लगता है, अपने अन्दर के शत्रुओं को साधक समझने लगता है, मन समझ में आ जाता है।

मैंने बार-बार कहा है कि जो वस्तु मेरे पास है वो ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है। यह सुन एक ने मुझसे कहा कि जो आप कहते हैं कि जो पॉवर मेरे पास है, किसी के पास नहीं, इसे प्रमाणित करो। मैंने उससे कहा कि मैं पॉवर नहीं बोल रहा हूँ, वस्तु बोल रहा हूँ। शब्दों की तरफ ध्यान दो।

जैसे कोई दुकानदार कहता है कि जो मिर्ची मेरे पास है, कहीं नहीं मिल सकती। वो कहता है कि यह फलानी-फलानी जगह से आई है। ...तो मैं जिस वस्तु की बात कर रहा हूँ, वो भी इस संसार की नहीं है, तीन लोक में कहीं नहीं है। वो चौथे लोक की वस्तु है। जब वो वस्तु मिलती है तो तीन चीज़ें आ जाती हैं। मैंने अपनी इस चीज़ का अनुभव एक-दो पर नहीं, बल्कि लाखों लोगों पर किया है। इसलिए इसमें कोई संशय नहीं है, पक्की बात है। तीन चीज़ें शर्तिया होती हैं। जिसे भी मैं नाम देता हूँ, तीन चीज़ें पक्का हो जाती हैं—

1. आत्मा और मन अलग हो जाते हैं।

2. संसार का आकर्षण समाप्त हो जाता है।

3. एक पूर्ण सुरक्षा मिल जाती है।

असर सामने है। मेरा हर नामी नाम पाकर बदल जाता है। हर इंसान मन तरंग में नाच रहा है। मन प्रबल है। पर मेरे नामी के साथ अब ऐसा नहीं हो पा रहा है। नाम पाने के बाद मेरा हर नामी चेतन हो जाता है। अन्य पंथों के लोगों के साथ मेरे नामी की तुलना की जाए तो उनका अपने ऊपर कोई होल्ड नहीं मिलता है, कोई आध्यात्मिकता नहीं मिलती

है। मेरे नामी अपने को सबसे अलग पाते हैं, उन्हें अपने अन्य साथी बेवक़ूफ़ लगते हैं, उनकी हरकतें पागलों वाली लगती हैं, क्योंकि उनके मूड का कोई पता नहीं होता कि कब अच्छे बन जाएँ और कब गंदे। कब मूड खराब हो जाए, कोई पता नहीं। यानी मन पर कोई होल्ड नहीं होता, इसलिए पागल।

मेरे नामी का मन पर होल्ड होता है, क्योंकि नाम के साथ मैं मन से उसकी आत्मा का बिलगीकरण कर देता हूँ, दोनों को अलग कर देता हूँ, जिससे मन समझ में आने लगता है। यह काम दुनिया में सबसे कठिन है, जो कोई नहीं कर सकता है। जब मन समझ आने लग जाता है तो दुनिया फीकी लगने लग जाती है, उसका आकर्षण समाप्त होने लग जाता है। फिर तीसरा हर नामी को लगता है कि उसके साथ में एक सबल संरक्षक है, हरेक को वो संरक्षक अनुभव होता है। सच है, यह जो वस्तु मेरे पास है, ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है। इस वस्तु से मन की दुनिया समाप्त होती जाती है और आत्मा का रूप समझ आने लग जाता है।

ध्यान क्यों किया जा रहा है? यह जानने के लिए कि मैं क्या हूँ? गुरु आत्मा और मन को अलग कर देता है। किसी कीमत पर यह काम अपनी ताकत से नहीं हो सकता है। मन ने ऐसे उलझा दिया है कि आत्मा कुछ समझ नहीं पा रही है। मन कहता है कि रोटी खानी है तो आत्मा कहती है कि यही मेरी इच्छा है। इस तरह मन ने आत्मा को अपने पीछे लगा रखा है। आत्मा सभी इच्छाओं में, कल्पनाओं में घूम रही है। जितने भी कर्म मनुष्य कर रहा है, सभी उलझन वाले हैं। जब भी कोई चाहे कि इससे निकलें तो यह नहीं निकलने दे रहा है। इसकी पकड़ बड़ी दूर तक है। धन-दौलत दे देगा, सिद्धियाँ-शक्तियाँ दे देगा, पर अपने से आगे नहीं जाने देगा। एक अदव गुरु आपको बाहर निकाल देगा।

मन की पहली ताकत है—अज्ञान। मन आत्मा में ऐसे घुल-मिल गया है कि बड़ा झमेला हो गया है। आत्मा यह झमेला लिए-लिए घूम रही है, इसे समझ नहीं पा रही है। चाहे कोई करोड़ों उपाय भी कर ले, इस झमेले को समझ नहीं सकता है, मन की सीमा से बाहर नहीं जा सकता है।

गुरु यथार्थ में आत्म रूप दिखाता है। हंस की चोंच में गुण है। वो दूध पीता है। अगर उसमें पानी मिला हो तो वो उसे छोड़ देता है, केवल दूध-दूध पी जाता है। यदि पाव दूध में पाव पानी मिलाकर दे दिया जाए तो वो पूरा दूध पी लेगा और पूरा पानी छोड़ देगा। यह काम और कोई नहीं कर सकता है। केवल हंस। ऐसे ही पूर्ण सद्गुरु की सुरति में यह ताकत है कि आत्मा और मन को अलग कर सकता है। यह काम गुरु पल में कर देता है। फिर आत्मा दुबारा मन में नहीं समा सकती। चाहकर भी नहीं। जैसे—

दूध को मथ घृत न्यारा किया,
पलट कर फिर ताहिं में नाहिं समाई॥

दूध से घी बना लिया तो फिर दूध नहीं हो सकता। यदि दही को मथ मक्खन निकाल लिया तो फिर चाह कर भी उसमें नहीं समा सकता। जब पूर्ण गुरु आत्मा को मन से अलग कर देता है तो फिर आत्मा मन में नहीं समा सकती है।

कितनी भी ताक़त लगा ले कोई, यह काम नहीं कर सकता है। पर—

कोटि जन्म का पथ था, गुरु पल में दिया पहुँचाय॥

तब एक संतुष्टि मिलती है। जैसे काँटा लगा हो तो निकालने पर आराम मिलता है। ऐसे ही मन का काँटा गुरु निकाल देता है। फिर आप

चाहकर भी जगत के पदार्थों में रम नहीं पायेंगे। जगत के पदार्थ आपको रोमांचित नहीं कर पायेंगे। ऐसे पर ही कहा—

सतगुरु मोर शूरमा, कसकर मारा बाण।
नाम अकेला रह गया, पाया पद निर्माण॥

यह काम पल में किया। फिर तीसरा, एक संरक्षक भी साथ हो गया। हर पल के लिए एक ताकत साथ में दे देता है। तभी तो कहा—

जब मैं था तो गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहीं।
प्रेम गलि अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

जो आप अपने को महसूस कर रहे हैं, यही धोखा है। यह आपा ही ही आसक्त है। यह पूरा खत्म हो जाता है। क्यों?

गुरु समाना शिष्य में, शिष्य लिया कर नेह।
बिलगाए बिलगे नहीं, एक रूप दो देह॥

गुरु आपको अपने समान कर देगा। आप अपनी दुनिया ही भूल जाओगे। साहिब की वाणी में वजन है—

नाम पाय सत्य जो बीरा, संग रहूँ मैं दास कबीरा॥

सच मानना, अभी बार-बार चेताकर कह रहा हूँ, जब यहाँ से चला जाऊँगा तो दुनिया पछताएगी, क्योंकि सत्य है—**जो वस्तु मेरे पास है, ब्रह्माण्ड में कहीं भी नहीं है।**



डांकिनी शाकिनी बहु किलकारें, जम किंकर धर्मदूत हंकारे।
सत्य नाम सुन भागें सारे, जब सतगुरु नाम उचारा है।।

योगमत में काल पुरुष की
निर्गुण भक्ति में ध्यान साधना के शब्द

1. चाचरी मुद्रा—इस में योगी दोनों आंखों के मध्य छिद्र में ध्यान रोकता हुआ **ज्योति निरंजन** शब्द का जाप करता है। इस शब्द से अग्नि तत्व उत्पन्न हुआ। संचालन करता अग्नि देवता।

2. भूचरी मुद्रा—इस में योगी ओम **(ओंकार)** का जाप करता हुआ आज्ञा चक्र में ध्यान रोकता है। इस शब्द से जल तत्व उत्पन्न हुआ। संचालन करता जल देवता।

3. अगोचरि मुद्रा—इस में **सोहंग शब्द** का जाप होता है और ध्यान अनहद धुनों में रखा जाता है। इस शब्द से वायु तत्व पैदा हुआ। संचालन करता पवन देवता।

4. उनमुनि मुद्रा—इसमें योगी अद्‌भुत प्रकाश देखता और **सत् शब्द** का जाप करता है। जिससे पृथ्वी तत्व पैदा हुआ। संचालन करता पृथ्वी का देवता।

5. खेचर मुद्रा—इस मुद्रा में **रंरकार** का जाप करता हुआ योगी दसवें द्वार में चला जाता है। इस से अकाश तत्व की उत्पत्ती हुई। यहां का देवता काल पुरुष निराकार निरंजन है जो चार तत्व का संचालन करता है। सभी देवी-देवते इसका परिवार है। यही मन रूप में बनकर सभी में समाया हुआ है।

इन पांचों मुद्राओं को सन्तों ने योगमत बताया और संतमत इससे अलग व आगे बताया।

पांच शब्द और पांचों मुद्रा, सोई निश्चय कर माना।
इसके आगे पुरुष पुरातन उसकी खबर न जाना।।

—साहिब कबीर जी

खेचरि भूचरि साधै सोई। और अगोचरि उनमुनि जोई।।
उनमुनि बसै अकास के माहीं। जोगी बास करे तेहि ठाहीं।।
ये जोगी गति कहा पसारा। संत मता पुनि इन से न्यारा।।
जोगी पांचौ मुद्रा साधै। इंडा पिगला सुखमनि बाँधै।।

—तुलसी साहब हाथरस वाले

पूरे संसार में गुरु और सतगुरु को एक ही सत्ता पर स्थाप्त कर **एक ही बात** बोला जा रहा है।

आओ गुरु और सतगुरु के रहसय को जाने

''गुरु''	''सतगुरु''
1. गुरु केवल काया-नाम का गयाता है।	1. सतगुरु ही केवल विदेह-नाम का गयाता है।
2. काया के जो ध्यान सूत्र हैं, उन्से माया का ज्ञान होता है।	2. सतगुरु नाम से सुरति को जगाया जाता है जो मन और माया से बाहर जा सकती है।
3. काया के नाम में गुरु का स्थान ही नहीं है।	3. विदेह नाम में शुरु का स्थान अष्टम चकर में होता है
4. गुरु मन को आत्मा से अलग नहीं कर सकता। और न ही मन काबू कर सकता है।	4. सतगुरु आत्मा को मन से अलग कर देता है। और मन पूरा कंटरौल में आ जाता है।
5. गुरु रास्ता बताने वाला है।	5. सतगुरु धुर पहुंचान वाला है।
6. गुरु का नाम लिखने, पढ़ने, बोलने ओर जपने में आता है।	6. सतगुरु का नाम एक गुप्त पावर है जो जीवन भर आखरी सुआंस तक सेवक की सुरक्षा करती है यह गुप्त पावर जो लिखने पढ़ने बोलने में नही आता है।
7. गुरु शास्त्रों की शक्शी देकर अपना तत्व स्थापत करता है।	7. सतगुरु किसी शास्त्र का मुहताज नहीं है। वह अपने अनुभव से देखा हुआ तत्व स्थापत करता है।
8. काया का नाम मुर्दा नाम है जो देही को दिया जाता है।	8. सतगुरु का नाम जिन्दा नाम है। जो सुरति को दिया जाता है।

''गुरु''	''सतगुरु''
9. गुरु की पहुँच केवल दशम-द्वार तक है।	9. सतगुरु की पहुँच ग्यारहवें द्वार तक है।
10. गुरु भक्ति केवल नाम-कमाई पर केंद्रित है।	10. सतगुरु भक्ति पूरी तरह गुरु 'कृपा' पर केंद्रित है।
11. गुरु भक्ति केवल सगुण-र्निगुण दायरे तक ही सीमित है।	11. सतगुरु भक्ति की सीमा अनन्त तक है, जो सगुण-र्निगुण से भी आगे है।
12. गुरु तीन-लोक का गयाता है।	12. सतगुरु चौथे-लोक का गयाता है।
13. गुरु आत्मा का गयान नहीं दे सकता।	13. सतगुरु आत्मा का समर्पूण गयान देता है।
14. गुरु मुक्ति नहीं दे सकता।	14. सतगुरु ही केवल पूर्ण-मुक्ति का दाता है।
15. गुरु मन-माया की सीमा में बँधा हुआ व्यक्तित्व है।	15. सतगुरु मन-माया की सीमा से ऊपर मुक्त एक अमर व्यक्ति तत्व है।
16. गुरु परमपुरुष का भेद नहीं जानता।	16. सतगुरु खुद परमपुरुष में मिला हुआ और उन्हीं का तदरूप है।
17. गुरु किसी भी जीव-आत्मा को भवसागर से पार करने की क्षमता नहीं रखता।	17. सतगुरु अपनी कृपा से किसी भी जीव-आत्मा को भवसागर से हमेशा के लिए पार करने की क्षमता रखता है।
18. गुरु की पहुँच केवल निराकार सत्ता (काल निरंजन) तक ही है।	18. सतगुरु की पहुँच सीधा परमपुरुष तक है।
19. गुरु द्वारा बताए हुए सभी देशों अथवा धुनों का जिकर किया जा सकता है।	19. सद्‌गुरु के सार शब्द अथवा अमर लोक का खुलासा नहीं किया जा सकता।

वेद चारों नहीं जानत सत्य पुरुष कहानिया

कुरान शरीफ कह रहा है 'बेचूना खुदा'। बेचूना अर्थात् निराकार। ईसा मसीह भी कह रहे हैं मेरा आकाशी पिता (स्वर्गीय पिता) मैं उसका इकलौता पुत्र हूँ। अकाशी पिता अर्थात् निराकार। वेद भी निराकार की बात कह रहा है। **जेजे दृश्यम तेते अनित्यम्। जेजे अदृश्म तेते नित्यम्।** यानि निराकार। हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थ भी निराकार तक की बात कहते हैं। भाईयों जह निराकार सत्ता वाला जिसको लोग रब्ब, भगवान, हरि आदि कहते हैं, वह 84 लाख योनियों का रचनहार है परन्तु योनियों को चेतन करने वाली जो ऊर्जा है सुरति है वो कोई और चीज़ है तभी तो इस सिरजनहार निराकार को कबीर साहिब जी बोल रहे हैं।

मन ही निराकार, निरंजन जानिए।।

मुक्ति से सबका तात्पर्य निराकार की प्राप्ति। साहिब बन्दगी पंथ किसी की निन्दा नहीं करता। निराकार सत्ता को भी स्वीकार करता है, लेकिन आगे की बात का संकेत भी देता है। संत सम्राट् कबीर साहिब जी ने न्यारा कहा और निराकार सत्ता से आगे कहा। सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति अथवा पाँच मुद्राओं से आगे कहा।

इसके आगे भेद हमारा। जानेगा कोई जाननहारा।।
कहे कबीर जानेगा सोई। जा पर दया सतगुरु की होई।।

संतों ने आ कर तीन लोक से आगे परम निर्माण, अमर धाम, सत्य लोक अथवा दसवें द्वार से आगे 11वें द्वार का भेद संसार को दिया। भाईयों साहिब बन्दगी पंथ भी काल पुरुष के काया नाम और अमर लोक के विदेह नाम का अंतर समझा कर संसार को सत्य भक्ति की ओर ले जा रहे हैं।

काग पलट हंसा कर दीना। ऐसा पुरुष नाम मैं दीना।।
अकह नाम, लिखा न जाई, पढ़ा न जाई।
बिन सतगुरु कोई नाहि पाई।।

भृग मता होये जिहि पासा सोई गुरु सत्य धर्मदासा।।

जो आपको कह रहा है कि कुछ कर, कमाई कर, समझना कि वो संत नहीं है, संत वेश में कोई पाखण्डी है, जिसे यथार्थ ज्ञान कुछ भी नहीं है, केवल किताबों से पढ़कर सुना रहा है। संत तो सक्षम होता है, पर वो अक्षम है; संत आँखों देखी वाली बात करता है, वो किताबों वाली बात कर रहा है; संत यथार्थ में अमर-लोक से होकर आते हैं, उसने कभी अमर-लोक सपने में भी नहीं देखा है। यदि सपने में भी देखा होता तो जान जाता कि अपनी ताक़त से नहीं देखा, कोई दिखा गया। यह पक्की बात है कि सपने में भी अमर-लोक नहीं देखा जा सकता है। फिर वहाँ पहुँचना तो बड़ी दूर की बात है। इसलिए जिसके पास भृंग मते वाली थ्यूरी नहीं है, वो आपका बहुत बड़ा बैरी है, क्योंकि आपको धोखे में रखे हुए हैं। इस बात को अपने दिल में गहराई से उतार लेना कि वो आपका सर्वनाश करने पर तुला है, जो कह रहा है कि कुछ कमाई कर, कुछ साधना कर, तभी कुछ होगा। क्योंकि उस पाखण्डी को पता नहीं है कि—

सन्त-मत में शीश पर हाथ रखकर नाम दिया जाता है। कोई कहता है कि हमें गुरु जी ने माइक पर नाम दिया, कोई कहता है कि टी. वी. पर दिया। नहीं, नाम ऐसे नहीं दिया जाता। एक ने मुझसे भी पूछा कि यदि आपको हज़ार आदमी को एक साथ नाम देना पड़ेगा तो क्या तब भी ऐसे ही शीश पर हाथ रखकर देंगे? मैंने कहा कि यदि एक लाख आदमी को भी नाम देना पड़ा तो ऐसे ही दूँगा, क्योंकि नाम देने की विधि ही यही है। वो ऐसे ही दिया जाता है। यही सिस्टम है नाम का क्योंकि वो किरणें शिष्य को प्रदान करनी हैं।

शब्द

भई परदेशी नार

अबकी बेर उबारिये, मेरी अर्जी दीन दयाल हो।।
आई थी वही देश से, भई परदेशी नार।
वह मारग मैं भूलिया, बिसर गई निज नाम।।
जुगन जुगन भरमत फिरे, यम के हाथ बिकाय।
कर जोरे विनती करु, मोहिं मिलके बिछुर मत जाव।।
विषय नदी बिकराल है, बोहित करिया धार।
मोह नगर के घाट में, खाये सुर नर झार।।
शब्द जहाज कबीर का, सतगुरु खेवन हार।
कोई कोई हंस उबारहीं, पल में लेहिं छोड़ाय।।

आत्मदेव अमर लोक से इस संसार में आया था और यहाँ आकर परदेशी हो गया है। अब वो राह यह भूल गया है। युगों-युगों से काल के हाथ में पड़कर भ्रमित हो गया है। यह संसार रूपी नदिया बहुत ही भयानक है। यहाँ मोह रूपी बिकराल नदी बह रही है, जिसमें सुर, नर सब बहे जा रहे हैं। इससे निकलने के लिए साहिब का नाम जहाज की तरह है और उस जहाज को खेने वाला सद्‌गुरु है। कोई-कोई हंस ही इस जहाज में सवार हो पाता है और जो इसपर सवार हो जाता है, उसे सद्‌गुरु पल में पार कर देते हैं।

सत्यलोक इक पुरुष अपारा

सत्यलोक इक पुरुष अपारा। चौथे पद के पार बिचारा॥
तासु अंत जिव पुरुष नियारा। जाका पद चौथे के पारा॥
ताके पुत्र भये पुनि भाई। सोला निरगुन तिन कर नाईं॥
सो निरगुन जो पुरुष से भैया। जामें लघू निरंजन कहिया॥
ता को संत काल गोहरावै। सोई राम रमतीत कहावै॥
सोई निरंजन कहिये काला। आदहि जोति बिछाई जाला॥
पुरुष निरंजन जोती नारी। ये दोऊ मिलि सृष्टि रचा री॥
तिन के पुत्र तीनि जो जाना। ब्रह्मा विष्णु ताहि कर नामा॥
तीजे शंभू छोटे भाई। तीन पुत्र या बिधि उपजाई॥
निरंजन पिता जोति है माता। ये तीनों इनसे उतपाता॥
रमतीता सोइ बुझौ काला। जोती काल रचा जंजाला॥
ता के भये दसों अवतारा। काल अंस जग राम पसारा॥
रमता राम कर्म के माहीं। रमतीत राम काल की छाहीं॥
रमतीत काल ने जाल पसारा। रमता रहा राम भौ जारा॥
राम कहौ सोइ मन है भाई। मनहिं राम जिन जक्त बुड़ाई॥
राम काल सब संत पुकारा। जा को जपै यह युक्त लबारा॥
ब्रह्मा विष्णु महेसर जाना। बेद कहे सोइ झूठ पुराना॥
ये तीनों ने जाल पसारा। राम काल ने सब जग मारा॥
राम काल को जपै बनाई। चर और अचर सभी चरखाई॥
राम काल को जपिहै भाई। जम बंधन भौ खान समाई॥
रमतीत काल जोति है ठगनी। तीन पुत्र उपजाये अपनी॥
शास्त्र बेद औ दस औतारा। ये सब जानी काल पसारा॥
या के मत में परिहै प्राणी। काल जाल ये यम की खानी॥
तीनि लोक जम जाल पसारा। वो दयाल पद इन से न्यारा॥

वो दयाल समरथ है दाता। सो पद को कोउ संत समाता॥
वा की राह संत से जानै। भेष जक्त दोउ नहिं पहिचानै॥
संत मता कोइ भेद न जाना। सुरति संत चढ़ै असमाना॥
पहुँचै सुरति अगम ठिकाने। अपना आदि अंत घर जानै॥
सुरति मिलै पुरुष को जाई। तिन को नाम संत है भाई॥
संत राह सुरति को पावै। और सब भेष खानि में आवै॥
आदि पुरुष को देखै नैना। तब अदृष्ट की बूझै सैना॥
पतिब्रता सो पुरुष पिछानै। वा को इष्ट संत सब मानै॥
और इष्ट न जानै भाई। राम इष्ट ये काल कहाई॥
जो कोई राम पतिब्रत कीन्हा। सो सब परे कर्म अधीना॥
जिन दयाल से सुरति लगाई। सो पहुँचे वा पद में भाई॥
येहि बिधि संत कहैं गौहराई। अस अस संत सभी समझाई॥
राम काल जो जपै बनाई। संत वचन निंदा ठहराई॥
संत वचन निंदा कर माना। ता ते परे नर्क की खाना॥
या का कोई भर्म लै आवै। बार बार चौरासी पावै॥
आप अबूझ बूझि नहिं लावै। संतन को नास्तिक ठहरावै॥
यह सब भेष अंध भये भाई। संतन को निन्दक ठहराई॥
संतन की बूझै कोई बानी। तौ छूटै चौरासी खानी॥
राम काल को दूर बहावै। निस दिन संत चरन लौ लावै॥
वो दयाल कहुँ राह बतावैं। तब जिव अपने घर को जावै॥
संत चरन पावै निरबारा। राम काल जरा फाँसी डारा॥
जो कोई गहै राम की सरना। छूटै न जनम मरन का धरना॥
कहै राम के होई गये बेटा। ता को परिहै जम को सोंटा॥
जो कोई भये राम के प्यारे। खानि गये जम लातन मारे॥
तुलसी सत्य सत्य यहि सत्य भाखा। यामें पच्छपात नहिं राखा॥
संत वचन जेहि सत्य न भासी। जाकी होई जनम की नासी॥

चौथे पद मोक्ष के परे सत्यलोक में एक परम पुरुष रहता है। उसी के सारे जीव अंश हैं। उसी से आगे 16 निर्गुण पुत्र हुए, जिसमें एक निरंजन भी है। जिसे दुनिया परमात्मा कहती है, उसे संत काल पुरुष कहते हैं। इसकी स्त्री माया ही ज्योति है। इन्हीं के आगे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन पुत्र हुए। इसी के आगे दस अवतार हुए। सारा संसार जिनकी भक्ति करता है, संत उन्हें काल पुरुष के अवतार बताते हैं। पूरे तीन लोक में काल का जाल है, पर वो परम पुरुष तीन लोक से न्यारा है। उसका भेद केवल संत जन ही जानते हैं। जो संतों की यह बात सत्य नहीं मानते हैं, उनका मानव जन्म बेकार हो जाता है।

हंसा हंस मिले सुख होई

हंसा हंस मिले सुख होई।
इहाँ तो पाँती है बगुलन की, कदर न जाने कोई।।
जो हंसा तोहे पियास छीर की, कूप नीर न होई।
यह तो नीर सकल ममता को, हंस तजा जस चोई।।
षट दरसन पाखंड छानबे, भेष धरे सब कोई।
चार बरन औ वेद किताबे, हंस निराला होई।।
यह जम तीन लोक को राजा, बाँधे अस्त्र सँजोई।
शब्द जीत चलो हंस हमारे, तब जम रहिं हैं रोई।।
कहैं कबीर प्रतीत मान ले, जिव नहिं जाय बिगोई।
लै बैठारों अमर लोक में, आवागमन न होई।।

हंस समान जीवों को जब ऐसे ही जीव मिलते हैं तो आनन्द मिलता है। पर इस संसार में तो बगुलों की पंक्तियाँ ही हैं, हंसों की कदर करने वाला कोई नहीं। हे हंसा! यदि तुम्हें दूध की प्यास है तो वो कुएँ में नहीं मिलेगा। न किसी को यहाँ सच्चे साहिब का पता है, न सच्चा नाम ही है। यहाँ तो सब ओर मोह-माया का पानी है, जिसे हंस सारहीन

खोया समझकर त्याग देते हैं। छः दर्शन और उसकी 96 शाखाओं-प्रशाखाओं में सबने भेष बनाए हुए हैं, पर हंस तो चार वर्ण और वेद-कितेब से परे होता है। इस तीन लोक का राजा तो यम है, जिसने अपने काम, क्रोधादि अस्त्रों को संभाल कर रखा है। हे हंस! तुम हमारे शब्द को पकड़कर इस काल को जीत कर हमारे साथ चलो। तब यम सिर पकड़ रोयेगा। तुम विश्वास करो कि शब्द से जीव धोखे में नहीं आता; मैं तुम्हें शब्द के बल पर उस अमर-लोक में ले जाऊँगा, जहाँ से फिर इस संसार में आना नहीं होता।

चौथे लोक का तब सुख पावै

फंदा जम का कैसे कटे। निसि बासर जो नाम न रटे।।
यह घाटी है जम की फाँसी। सुर नर मुनि फँदे चौरासी।।
तीन लोक जम जाल पसारा। ता में उरझि रहा संसारा।।
जनम जनम है जम को त्रासा। मृत्यु लोक पाताल अकासा।।
सत्य सब्द परतीत न कोई। ऐसै सब जग गया बिगोई।।
चौथे लोक का तब सुख पावै। जब सतगुरु सत्य सब्द बतावै।।
मन बच कर्म जो नामहि लागै। जनम मरन छूटै भ्रम भागै।।

पूरे तीन लोक में काल की फाँस है, जहाँ पर सुर, नर, मुनि आदि सब बँधे हैं। धरती, आकाश, पाताल सब जगह उसी का भय है। सार नाम के बिना सारा संसार उसी के हाथ में पड़कर नष्ट हो रहा है। जब सद्गुरु से सार नाम की प्राप्ति होती है, तभी चौथे लोक का सुख मिल पाता है।

सतगुरु महल सतलोक कूँ

सजन सुराही हाथ है, अमृत का प्याला।
हम बिरहिन बिरहै रँगी, कोई पूछै हाला।।

चोखा फूल चुबाइया, बिरहिन के ताईं।
मतलवाला महबूब है, मेरा अलख गुसाईं।।
प्रेम पियाला पीय कर, मैं भई दिवानी।
कहा कहूँ उस देस की, कुछ अकथ कहानी।।
बरवै राग सुनाय कर, गल डारी फाँसी।
गाँठ घुली खूलै नहीं, साजन अविनासी।।
गुझ की बात किस कूँ कहूँ, कोई महरम जानै।
अगली पिछली मत कई, बेधी इक तानै।।
सतगुरु महल सतलोक से, बिरहा चल आया।
मुझ बिरहिन के लेन कूँ, मेरे सजन पठाया।।
रोम रोम में राग है, बिरहा रँग रासी।
लोक वेद झूठे लगे, पिछली बुध नासी।।
अरस गुमठ गुलजार है, बैगी गलताना।
सेत धजा जहँ फरहरैं, पंचरंग न निसाना।।
तन मन छाकै प्रेम से, मन मंगल महली।
दुलहिन दास गरीब है, जहँ सेज सलहली।।

विरहिनी आत्मा के प्रेम को देखकर उसे अमर लोक ले जाने के लिए सत्यलोक से सद्गुरु आते हैं।

हरि हजरत तब नाहीं

अवधू छाड़हु मन बिस्तारा।
सो पद गहौ जाहि ते सत्यगति, पारब्रह्म से न्यारा।।
नहीं महादेव नहीं मुहम्मद, हरि हजरत तब नाहीं।
आदम ब्रह्म कछु नहिं होते, नहीं धूप नहिं छाँही।।
असी सहस्र पैगम्बर नाहीं, सहस्र अठासी मूनी।
चंद्र सूर्य तारागन नाहीं, मच्छ कच्छ नहिं दूनी।।

वेद कितेब स्मृति नहिं संजम, जीव नहीं परछाई।
बंग निमाज कलिमा नहिं होते, रामहु नाहिं खोदाई।।
आदि अंत मन मध्य न होते, आतम पवन न पानी।
लख चौरासी जीव जंतु नहिं, साखी सब्द न बानी।।
कहैं कबीर सुनो हो अवधू, आगे करहु विचारा।
पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, किरतम किन उपजारा।।

मन की सीमा को छोड़ो और उस पद को पाने का प्रयत्न करो, जो पारब्रह्म से परे है। वहाँ महादेव, मुहम्मद, **हरि** आदि कोई नहीं है। वहाँ मनुष्य भी नहीं है, वहाँ मनुष्यों के परमात्मा भी नहीं है। वहाँ धूप और छाया भी नहीं है। सूर्य, चाँद, वेद, कितेब आदि कुछ भी नहीं है। दुनिया जिसे परमात्मा कहती है, वो कहाँ से प्रगट हुए और कृत्रिम परमात्माओं का सृजन किसने किया? उस तत्व पर विचार करो।

अमर लोक को पाई

काया गढ़ जीतो रे भाई। तेरो काल अवधि टर जाई।।
भरम कोट चहुँ ओर फिराये, माया ख्याल रचाई।
कनक कामिनी फंदा रोपे, जन राखे उरझाई।।
पचीस जाल जाके निशदिन व्यापे, काम क्रोध दोउ भाई।
लालच लोभ खड़े दरवाजे, मोह करे ठकुराई।।
पाँच मोरचा गढ़ के भीतर, इन्हें नाँघ जो जाई।
आशा मनसा तृष्णा कहिये, त्रिगुण बँधो है खाई।।
ज्ञान का घोड़ा धनुषकर पारख, विवेक लगाम लगाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, अमर लोक को पाई।।

यदि काया रूपी किले को जीत लो तो काल को जीत सकते हो। चारों ओर माया का भ्रम फैला है। धन और स्त्री दोनों बड़े फँदे हैं, जिनमें सबको उलझाकर रखा हुआ है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पाँचों

चोर, पाँच तत्वों की पच्ची प्रकृतियाँ, तीन गुण आदि में जीव को बाँध दिया गया है। यदि ज्ञान और विवेक से इन विकारों पर लगाम लगा ली जाए तो अमर लोक की प्राप्ति हो जाती है।

ककहरा (तुलसी साहिब हाथरस वाले)

कक्का कहूँ प्रथम गुरु साध आदि सब संत बखानी।
जुगन जुगन की बात कहूँ उतपति बिधि बानी।।
अंड नहीं ब्रह्माण्ड पिंड नहिं रचना ठानी।
अरे हाँ रे तुलसी हता नहीं बैराट कहीं चौरासी खानी।।
खख्खा खुली कहूँ टकसार काल जग रचना कीन्हा।
वो दयाल सत्यपुरुष तास कोउ भेद न चीन्हा।।
तीन लोक से पार सार सत्यलोक है।
अरे हाँ रे तुलसी चौथा पद परमान छान स्रुति को कहै।।
गग्गा गगन नहीं आकास भास भया सुन्नि से।
सुन्नि धुन्नि से सब्द सब्द से गुन्नि है।।
निरंकार जम जोति,
जाल जग डारिया।
अरे हाँ से तुलसी ब्रह्मा,
रचिया वेद कैद करि मारिया।।
घघ्घा घर भूले सब बाट घाट घट ना मिलै।
आद पुरुष पद छाड़ि काल घर को चलै।।
तिरदेवा पट पार काढ़ि कहो को सकै।
अरे हाँ रे तुलसी सिम्रत सास्तर वेद भेद में सब पके।।
नन्ना नहीं रूप नहिं रेख भेष ढूँढ़त फिरै।
भरमै चारों धाम काम इक ना सरै।।
पत्थर पानी साथ हाथ कछु ना लगा।

अरे हाँ रे तुलसी पिया रहे घर माहिं ताहि सँग ना पगा।।
चच्चा चले जात नर भूल सूल ता से सहै।
सतसंग मिलै न अंत संत बिन को कहै।।
सतगुरु मिलैं दयाल भेद कहैं मूर को।
अरे हाँ रे तुलसी कर्म काल को मेट करैं जम दूरि को।।
छछ्छा छिन छिन सुरति सँवार नाम दृग के रहौ।
तन मन दर्पन माँज साज स्रुति से गहौ।।
लगन लगै लख पार सार तब पाइया।
अरे हाँ रे तुलसी संत चरन की धूर नूर दर्साइया।।
जज्जा जिन जिन सुरति सँवारि काल डर ना रही।
चढ़ी गगन पर धाय पाय पति पै गई।।
लिया अगमपुर धाइ जाय पिउ भेंटिया।
अरे हाँ रे तुलसी जन्म जन्म भ्रम भाव दाव दुख मेटिया।।
झझ्झा झलकत नूर जहूर हरष हिये में भई।
निरखा रवि उजियार द्वार पच्छिम गई।।
सूरत चीन्हा भेद भरम तजि भागिया।
अरे हाँ रे तुलसी सब्द सुरति भया मेल खेल खुलि त्यागिया।।
टट्टा टोइ लिया सतसंग रंग गुर ने दिया।
जुगन जुगन तजि भूल आदि घर को लिया।।
सिव ब्रह्मा और वेद बिस्नु नहिं आ सकै।
अरे हाँ रे तुलसी निरंकार सोइ काल,
जोति नहिं जा सकै।।
ठठ्ठा ठौर ठिकाना ठाँव ठाँव पिया को कहो।
निरंकार के पार,
तहाँ तुलसी रही।
सत्यनाम सुख धाम,
अमरपुर लोक है।।

अरे हाँ रे तुलसी चौथा पद जद जाय संत सोई कहै।।
डड्डा डगर सत्य का पंथ अंत कहो को लखै।
जग पंडित और भेष भूल भव में पकै।।
तीरथ नेम अचार भार सिर पर लिया।
अरे हाँ रे तुलसी कर्म धर्म अभिमान जानि करि ये किया।।
ढढ्ढा ढिग ही पूरन बस्त कस्द कोइ ना करै।
गुरु संत बिन भेद पार कैसे परै।।
पढ़ि पढ़ि वेद पुरान ज्ञान करि करि मुए।
अरे हाँ रे तुलसी कथा सुने सोइ जोनि पौन भूतै भये।।
णणा नीच ऊँच नहिं देख पेख सब एक पसारा।
नहिं बाम्हन नहिं सूद्र नहीं छत्री कोउ न्यारा।।
नहीं बैस की जाति सकल घट एक पसारा।
अरे हाँ रे तुलसी जो करि जानै दोइ खोइ जिन जनम बिगारा।।
तत्ता तुरत तत्त को खोज रोज रच दरस दिखावै।
अगम निगम का भेद घाट घट में जब पावै।।
बिना तत्त नहिं मूल भूल चौरासी आवै।
अरे हाँ रे तुलसी तत मत सूरत राच सब्द में जाय मिलावै।।
थथ्था थिर होइ सुरति लगाव थोब थिर मन को राखौ।
इंद्री चलै न जाय पाय गुन को नहिं भाखौ।।
प्रकृति पचीसौ बास महल से काढ़ निकारौ।
अरे हाँ रे तुलसी जब लग है कुछ हाथ संत की टहल बिचारौ।।
दद्दा देखो दृष्टि पसारि सार कुछ जग में नाहीं।
दिन चार का रंग संग नहिं जावै भाई।।
धन संपत परिवार काम एको नहिं आवै।
अरे हाँ रे तुलसी दीपक संग पतंग प्रान छिन में चलि जावै।।
धध्धा ध्यान धरो घट माहिं सुरति को काढ़ि निकगारी।

उलटि चलो असमान हिये बिच होत उजारी।।
ता उजियारे बैठि लखो ब्रह्माण्ड पसारा।
अरे हाँ रे तुलसी जो अंडे बिच जीव निरखि भिनि भिनि बिध सारा।।
पप्पा पड़े जगत के माहिं भक्ति सुपने नहिं भावै।।
बाम्हन पंडित भेष सबै पुनि दान करावै।
जिन कीन्हा तन साज ताहि से नेह न लावै।
अरे हाँ रे तुलसी जब जम पकरै बाँह पूत को कौन छुड़ावै।।
फफ्फा फूलै फूले फिरें देखि धन धाम बड़ाई।
तन फुलेंल और तेल चाम को चुपरें भाई।।
दिना चारि का खेल मिलै फिर खाक में।
अरे हाँ रे तुलसी पकरि फिरिस्ते करें सलाई आँखि में।।
बब्बा बड़ा जगत जंजाल जाल जम फाँसी डारी।
ज्यों धीमर जल माहिं पकर करि मछरी मारी।।
निकरि जाय जब प्रान काल चोटी धर खींचा।
अरे हाँ रे तुलसी परिहौ जम मुख माहिं डाढ़ चक्की ज्यों पीसा।।
भभ्भा भगी सुरति घट माहिं जाय जो देखा भाई।
मुखमनि सेज सँवारि सुन्नि में सुरति लगाई।।
सुकर माहिं दीदार दरस कीन्हा सोइ जानै।
अरे हाँ रे तुलसी ज्यों स्वाँती की बूँद सीप बिरहिन पहचानै।।
मम्मा मुसकिल होइ आसान जानि कोइ ना सरै।
करै तत्त की खोज काज घट में सरै।।
बाहर है सब झूठ लूटि जम लेइंगे।
अरे हाँ रे तुलसी तन छूटै बेहाल बहुत दुख देइंगे।।
यय्या या को चीन्ह विचार कहो ये कौन है।
बोले सब घट माहिं परख कित पौन है।।
धरती अगिनि अकास नीर कोउ को न था।

अरे हाँ रे तुलसी रचा नहीं बैराट बोलता कहँ हता।।
ररा रात दिवस कर खोज रोज रस ज्ञान सुनावै।
घट घट उठै अवाज तासु कोउ भेद न पावै।।
पिंड माहिं ब्रह्माण्ड सकल बिधि रहा समाई।
अरे हाँ रे तुलसी खोलि हिये की आँख संत दीन्हा दरसाई।।
लज्जा लोभ लोग पचि मरे कहो को खोज लगावै।
इंद्री रस सुख स्वाद भोग नीके करि भावै।।
राम राम की टेक भेष सब जगत पुकारा।
अरे हाँ रे तुलसी जीव मिलै न मुक्ति मुए को कहै लबारा।।
वव्वा वा को खोज गँवार सार जिन किया पसारा।
रोम रोम ब्रह्माण्ड कोटि छबि रवि उजियारा।।
अजर अमर वह लोक सोक सब दूर बहावै।
अरे हाँ रे तुलसी राम कृस्न अवतार दसों नहिं जाने पावै।।
सस्सा सोच करी मन माहिं पिंड कहो कौन सँवारा।
आदि अन्त का खेल किया किन विधि विधि सारा।।
निरंकार नहिं हता,
नहीं तब जोति रहाई।
अरे हाँ रे तुलसी ब्रह्मा बिस्नु,
न वेद नहीं अवतारी भाई।।
हहा हक्का हजूरी संत पंथ कोइ रहे न भाई।
सत साहिब सिरदार और कोइ दूजा नाहीं।।
कागद स्याही कलम रहे नहिं लिखनेहारा।
अरे हाँ रे तुलसी आदि अंत नहिं हता नाहिं सत्य असत पसारा।।
अआ अष्ट कँवल दल फूल मूल मारग तब पावै।
सहस कँवल दल छाँड़ि कँवल दल दुइ पर आवै।।

लखै चार दल कवल ताहि पर सुरति चढ़ावै।
अरे हाँ रे तुलसी तिरबेनी के पार सार सत्यलोक दिखावै।।
ईया इतना भेद अभेद गुरन से मिलै ठिकाना।
कहैं अगम की राह सुरति से फोड़ निसाना।।
गई सिंध के पार यार लख पुरुष पुराना।
अरे हाँ रे तुलसी ज्यों सलिला जलधार सिंघ धस जाय समाना।।
ऊब उलटि चलै दरबार पार घर अपना पावै।
बुंद सिंघ का मेल खेल खद आप कहावै।।
भूली बस्त मिलाप आप अपना दरसावै।
अरे हाँ रे तुलसी जिन चीन्हा यह भेंद सोई सत्य संत कहावै।।
अरल ककहरा अकं बंक बत्तीस बखाना।
संत पंथ अज अमर आदि घर अपना जाना।।
जो कोई करै विवेक एक सब घट पहिचानै।
अरे हाँ रे तुलसी सतगुरु मिलै दयाल काल गत भिन भिन छानै।।

युग युग आकर संतों ने तबकी बात की है, जब न पिंड था न ब्रह्माण्ड था, न बैराट पुरुष था, न चौरासी की खानि बनी थी। तीन लोक से परे एक सत्यलोक है। वहाँ परम पुरुष था। उसका भेद कोई नहीं जानता है। शून्य भी नहीं था, शब्द भी नहीं था। यह सब तो निरंजन ने जाल फैलाकर भ्रमित किया है। वेद की रचना की गयी और जीवो को तीन लोक की सीमा में कैद करके भुला दिया गया। सब जीव अमर लोक की सुधि भूल गये। किसी को वहाँ की राह न मिली और उलटा काल पुरुष की राह पर चल पड़े। सब वेद, शास्त्रों में ही उलझ गये और चारों धाम आदि धर्म स्थानों पर भटकने लगे। पर पत्थर और पानी से कल्याण न हो सका। अन्दर निवास करने वाले प्रभु को भूल गये, इसलिए कष्ट को प्राप्त हुए। संतों के बिना सही घर की राह कौन बता सकता है।

सद्‌गुरु दयाल होकर अज्ञानी जीव को रहस्य बता देते हैं और कर्म-जाल काटकर काल का कष्ट दूर कर देते हैं। जिस जिस ने भी सुरति को सद्‌गुरु के नाम में लगाया, वो अमर लोक में जाकर अपने साहिब रूपी प्रियतम से मिल गये और उनका जन्म-मरन का दुख समाप्त हो गया। निरंकार के परे अमर लोक है, संत लोग वहाँ की बात बताते हैं। अन्य तो तीर्थ, ब्रत आदि में ही जीवों को उलझाते हैं और जीव अपना अमोलक जीवन बेकार में गँवा देते हैं। जो सतों की बात समझ जाते हैं, वो सुरति को सार नाम में समा देते हैं। जब तक जीवन है, संतों के संग में रहकर उनकी बातें समझो। संसार के रिश्ते-नातों में मत भूलो। यहाँ कोई अपना नहीं है। कोई परिवार वाला काम नहीं आयेगा, कोई धन काम नहीं आयेगा। यम जब पकड़ लेगा तो कोई अपना उससे छुड़ा नहीं पायेगा। मान-बढ़ाई और धन-दौलत के बढ़ते देखकर बहुत खुश न होना, यह थोड़े दिन का साथ है, बाद में मिट्‌टी में मिला दिये जाओगे। फिर यमदूत आँख में गर्म-गर्म सलाखें डालेंगे। इस संसार में काल ने बहुत बड़ा जाल फैलाया हुआ है। जिस तरह धीमर मछलियों को पकड़-पकड़कर मार डालता है, ऐसे ही काल प्राणों को खींच लेगा। और फिर उसके मुँह में चक्की के दाने की तरह पिसोगे। इसलिए सुरति को सँभालो और परम तत्व की खोज करो। बाहर में मत भटको। बाहर सब झूठ है, कल्याण नहीं है। यमदूत लूटकर ले जायेंगे और फिर बहुत दुख देंगे। इसलिए उस अमर लोक में जाने का विचार करो। अवतार भी वहाँ नहीं जा पाते हैं। तब न निराकार था, न ज्योति थी, न अवतार थे। केवल एक सत्य साहिब थे, दूसरा कोई नहीं था। आदि अंत कुछ भी नहीं था। उन साहिब का भेद सद्‌गुरु से ही मिल सकता है। सद्‌गुरु की कृपा से अमर आत्मा को अपना सही घर मिल जाता है और वो बूँद की तरह उस अमर लोक रूपी समुद्र में समा जाती है।

संत बिन भेद न हाथ आवै

गगन के गुमठ पर गैब का चाँदना।
संत बिन भेद न हाथ आवै।।
हद्द बेहद्द के पार परचा मिलै।
होई निज हंस सोई महल पावै।।
अमरपुर बास जहँ नहीं जम त्रास है।
काल का अमल बल नाहिं जावै।।
दास तुलसी हजूर दरबार है।
अलख और खलक दोउ नाहिं आवै।।

संत सद्गुरु के बिना उस अमर लोक का भेद मालूम नहीं चलता है। उस अमर लोक में काल का भय नहीं है, क्योंकि वहाँ काल पुरुष रूपी अलख परमात्मा की पहुँच नहीं है।

काया नगर अनूप देख मन भावहीं

काया नगर अनूप, देख मन भावहीं।
सखी बसत तहँ पाँच, कोई लख पावहीं।।
पाँचन संग पचीस, तीन अरु देखहीं।
गुन तीनों परचण्ड, सोई निज खेलहीं।।
तैंतीनों बड़ जोर, तो दुन्द मचावहीं।
इन संगम मन लाग, रैन दिन धावहीं।।
काम क्रोध हंकार, लोभ मन भावहीं।
यह मनुवा बड़ जोर, हाथ नहिं आवहीं।।
मन जीते बिनु मुक्ति कबहुँ नहिं पावहीं।
जे नर भक्ति बिहीन, सदा दुख पावहीं।।
क्षमा शील संतोष, सुमति हिय राखहीं।
कुमति कुसंग निवार, सत्य मुख भाखहीं।।

गुरु चरणों चितलाय, नाम रस पीवहीं।
सो पहुँचे सत्य लोक, जुगो जुग जीवहीं।।
वह घर अगम अपार, तो आप बिराजहीं।
बहुत सोभा परकास, रूप अति छाजहीं।।
कहैं कबीर विचार, तो मान निहोर हो।
समुझ के उतरो पार, शब्द गहु मोर हो।।

काया रूपी नगर बड़ा अनोखा है, इसे देख मन बड़ा खुश होता है। इसमें पाँच कर्मेंद्रियाँ रहती हैं, जिन्हें विरला ही समझ पाता है। इन पाँचों के साथ पच्चीस प्रकृत्तियाँ भी रहती हैं और साथ में सत, रज, तम—तीन गुण भी देखे जा सकते हैं। ये तीनों गुण बड़े प्रचण्ड हैं, जो शरीर में आकर खेल दिखाते हैं। इस तरह ये तैंतीस ही बड़े प्रबल हैं, जो काया में बड़ा शोर मचाते हैं। इन्हीं के साथ में लगा हुआ मन रात-दिन दौड़ता रहता है। काम, क्रोध भी मन को अच्छे लगते हैं। यह मन बड़ा ताक़तवर है, जो हाथ में नहीं आता और इस मन को जीते बिना, इसे काबू किये बिना मुक्ति भी नहीं हो सकती। जो मनुष्य भक्ति से रहित होते हैं, वे सदा दुख पाते हैं। जो क्षमा, संतोष, शील, सुमति आदि गुणों को हृदय में रखते हैं और कुमति, कुसंग आदि को दूर रखते हैं; जो सदा सत्य वचन ही मुख से निकालते हैं और गुरु-चरणों में चित्त को लगाकर नाम रूपी रस का पान करते हैं, वे सत्यलोक पहुँच युग-युग जीते हैं यानी सदा वहाँ निवास करते हैं, फिर-फिर संसार में आकर मरते नहीं। वो घर अगम है, अपार है, उसमें जीवात्मा स्वयं विराजता है। तब उसकी शोभा और प्रकाश बहुत बढ़ जाता है। साहिब विचार कर कहते हैं कि मेरा निवेदन मानो और मेरे सत्य नाम को पकड़कर भवसागर से पार हो जाओ।

साहिब लेइ चलो देस अपाना

साहिब लेइ चलो देस अपाना।।
जम की त्रास सही नहिं जाई, केहि विधि धरौं मैं ध्याना।।
माया मोह भरम की मोटरी, यह सब काल कलपना।।
माया मोह भरम सब काटो, दीजै पद निरबाना।।
अमर लोक वह देस सुहेला, हंसा कीन्ह अपाना।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, आवागवन नसाना।।

विनती करते हुए धर्मदास जी सद्‌गुरु कबीर साहिब से कह रहे हैं कि हे साहिब, मुझसे काल का कष्ट सहा नहीं जाता है, इसलिए कृपा करके अपने अमर लोक में ले चलो।

चौथे को उन भेद न जाने

पार उतरना जो कोई चाहै, सो खेवट से प्रीत निबाहै।।
भवसागर भव संकट होई। पार सार नहिं बूझै कोई।।
सूझै जो नहिं अगम पसारा। होय पार खेवट करे सारा।।
खेवट महिमा जाने कोई। तीन लोक खेवट को होई।।
पारब्रह्म जो कहिये ऐसा। जाके आगे सतगुरु देसा।।
जम को जहाँ नहीं परबेसा। आदि पुरुष कै जहवाँ देसा।।
जहँ सोइ जाय और सो होई। जरा मरन से बाचे सोई।।
तीन लोक को वेद बखाने। चौथे को उन भेद न जाने।।

यदि कोई भवसागर से पार होना चाहता है तो सद्‌गुरु रूपी नाविक से प्रीत करनी होगी। जो उससे प्रीत करता है, उसे वो तीन लोक से परे अपने देश में ले जाता है, जहाँ काल का प्रवेश नहीं है। वो परम पुरुष का देश है। वेद उस अमर लोक का भेद नहीं जानता है। वो तो केवल तीन लोक की बात करता है।

मन परचे बिन पार न पावै

मन परचे बिन पार न पावै। या जग गोबिंद को गुन गावै॥
सोई बिसंभर सोई रामा। सोई कृस्न गोपिन्ह सँग कामा॥
सोई निकलंकी बावन रूपा। बाँध रूप सो धरे सरूपा॥
तीन लोक या की ठकुराई। बेद कितेब जम जाल बनाई॥
तीन लोक आसा जिन्ह लाई। फिरि भरमै चौरासिहि जाई॥
चौथा लोक सतगुरु की बानी। ता को खोजहु पंडित ज्ञानी॥
भेद निरखि लेहु तो ततु सारा। काया कोट बड़ा बिस्तारा॥

दरिया साहिब कह रहे हैं कि मन, जो तीन लोक का राजा है, को जाने बिना कोई भी इस संसार-सागर से पार नहीं पा रहा है। कोई गोविंद के गुण गा रहा है, कोई राम जी के गुण गा रहा है, कोई कृष्ण जी के गुण गा रहा है, कोई निकलंकी भगवान (एक अवतार) के गुण गा रहा है, कोई बावन रूप के गुण गा रहा है। ये सब तो तीन-लोक के राजा हुए। वेद-कितेब आदि तो काल का ही जाल है, इसलिए जिसने भी तीन लोक की आशा रखी, वो फिर-फिर चौरासी में ही भटका है। यह काया बहुत विशाल है, इसमें सार तत्व की खोज करो। संतों की वाणी तो तीन लोक से परे, चौथे लोक की बात कर रही है, उसी की खोज करो।

अगर दीप सतलोक में

आज का लाहा लीजिये, कल्ह किस कूँ होई।
यह तन माटी में मिलै, जानै सब कोई।।
लखी करोड़ी चल गये, बहु जोड़ खजाना।
जा तन चंदन लेपते, सो धरे मसाना।।
हाथी घोड़े पालकी, दल बल बहु साजा।
सवा लाख संगी गये, रावन से राजा।।
कुम्भकरन से बीर थे, लंका छत्रधारी।

नाम बिना बंस बूड़ि है, समझावै नारी।।
भभीछन पद भेदिया, निरगुन निरबाना।
रावन दई बिसार रे, तज गरब गुमाना।।
बड़ चकवै काल चक्र पड़े, जिन नाम बिसारा।
कंस केसि चानूर से, धर बाल पछारा।।
हिरनाकुस समझो नहीं, पहलाद पढ़ावै।
उदर बिनासा आन कर, तब कौन छुड़ावै।।
जरासिंघ से मारिया, और सहस्राबाहू।
ग्राह से जगहिं छुड़ाइया, निज नाम है साऊ।।
दुसासन पर लै गये, एकोतर भाई।
दुरजोधन की देह कूँ, तन गौधन खाई।।
सतगुरु सांचा नाम है, भज लीजो सोई।
अगर दीप सतलोक में, तब बासा होई।।
सहस अठासी दीप में, उतपति की खानी।
दास गरीब भक्ति मिलै, तब थिर होय प्रानी।।

बड़े-बड़े इस संसार में आए, पर सबको एक दिन जाना ही पड़ा। यहाँ कोई भी स्थिर नहीं रहने वाला है। यह विचार कर सद्गुरु के सच्चे नाम का सुमिरन कर लो जिससे अमर लोक में वास मिल सके।

अजब दिवाना देस है

सुन्न सरोवर हंस मन, मोती चुग आया।
अगर दीप सतलोक मेंस ले अजर झराया।।
हंस हिरंबर हेत है, हैरान निसानी।
सुख सागर मुक्ता भये, मिल बारह बानी।।
पिंड अंड ब्रह्माण्ड से, वह न्यारा देसू।

सुन्न समझिया बेग रे, गये बाद बिबादू।।
सतगुरु सार जु गाइया, घर कूँची ताला।
रंग महल में रोसनी, घट भया उजाला।।
नाम सहर बेगमपुरा, जहँ लागी ताली।
सब घट मन मौजूद है, नाहीं कोई खाली।।
अजब दिवाना देस है, जहँ हिल मिल रहिये।
कहता दास गरीब है, मुक्ता पद लहिये।।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड से परे एक अनोखा देश है, जहाँ पहुँचने के बाद जीव वापिस भवसागर में नहीं आता है।

कहँ लें कहाँ कहा नहिं जाई

रामै जोति अउर नहिं कोई। किसुन रूप धरे पुनि सोई।।
ब्रह्मा बिस्नु जोति अवतारा। पुरुष नाम ओहि रंग करारा।।
अमर लोक तें हम चलि आई। साहिब कहा शब्द समुझाई।।
दीन्हा बचन शब्द कै दागी। जगत माहिं भया अनुरागी।।
गर्भ बास जब दीन्ह औतारा। जनम भया देखा संसारा।।
कछु दिन बाल रूप चलि गयऊ। कछु दिन सब्द संयम में रहेऊ।।
कछु दिन माया मोह बिस्तारा। कछु दिन ममता सबै हमारा।।
कछु दिन बीते भा तब ज्ञाना। कृपा कीन्ह सत्य साहब जाना।।
कीन्ह कृपा अति सीतल बानी। प्रेम भगति सत्य सुमिरन ठानी।।
भयो प्रेम निकलंक बिचारा। गुरु गमिज्ञान नाम निजु सारा।।
तनिक सरूप कीन्ह अनुसारा। बरते तेज सब लोक उँजियारा।।
कहँ लें कहाँ कहा नहिं जाई। ज्ञान दृष्टि मन देखु लगाई।।

साहिब कह रहे हैं कि सब अवतार निरंजन के हैं। मैं परम पुरुष का नाम लेकर अमर लोक से आया हूँ। उस लोक का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

हंसा अमर लोक निज देसा

हंसा अमर लोक निज देसा॥
ब्रह्मा विष्णु महेसुर देवा, परे कर्म के भेसा।
जुगन जुगन हम आई चिताये, सार सब्द उपदेसा॥
सिव सनकादिन और नारद ह्वै, गै कर्म काल कलेसा।
आदि अंत से हमैं न चीन्हे, धरत काल को भेसा॥
कोई कोई हंस सब्द बिचारे, निरगुन करे निबेरा।
सार सब्द हिरदे में झलके, सुख सागर को हेरा॥
पान परवाना सब्द बिचारे, नरियर लेखा पाये।
कहै कबीर सुख सागर पहुँचे, छूटे कर्म की फाँसा॥

कह रहे हैं, हे हंस! वो अमर लोक तुम्हारा अपना देश है। बाकी सारा संसार भ्रम में पड़ा हुआ है। मैंने युग-युग इस संसार में आकर चेताया; सार-शब्द का संदेश दिया, पर बड़े-बड़े भी कर्म के जाल में फँसे हुए मिले; कोई भी मुझे पहचान नहीं पाया। कोई बिरला हंस ही मिला, जिसने निर्गुण परमात्मा को छोड़ सार-शब्द को समझ हृदय में धारण किया। जिस-जिस ने भी सार-शब्द को समझकर मुझसे वो नाम प्राप्त किया, वो कर्म की फाँस से छूटकर सुख सागर में पहुँच गया।

सत्य नाम निजु प्रेम लगावै

सत्य नाम निजु प्रेम लगावै। सार शब्द सो परगट पावै॥
अभय लोक सतगुरु की बानी। आवा गवन मेटै सो प्रानी॥
तहवाँ जाय बैठो तुह दासा। छोड़हु संसय जम कै त्रासा॥
मन के पछ सब जगत भुलाना। मन चीन्है सो चतुर सुजाना॥
मन चिन्हला बिनु पार न पावै। देह धरि फिरि भव जल आवै॥
भरम छोड़ि शब्द कँह लागै। कह दरिया सो प्रेम रस पागै॥
मन के चीन्हि राखै एक ठाईं। जरा मरन कबहीं नहिं पाई॥

मन करता सब काम सँवारै। मनही लेइ नरक मँह डारै॥
मनहिं तीर्थ यह सकल फिरावै। मनही मन के पुजा चढ़ावै॥
मनहि मारि मनही में आवै। मनहि चीन्हि के जग समुझावै॥
मन के सनक सनन्दन लागे। मनही के जोगी सब जागे॥
मनही बेद कितेब पुराना। मनही षट दरसन जग जाना॥
नौधा भगति सब मनहि बुझावै। मूल भगति बिरला कोइ पावै॥
जाँ लगि मूल सब्द नहिं पावै। ताँ लगि हंस लोक नहिं जावै॥

दरिया साहिब कह रहे हैं कि सद्गुरु की वाणी जिस लोक का रहस्य देती है, वो एक अभय लोक है। उनसे सार शब्द पाकर जो प्राणी नाम से प्रीत करता है, उसका आवागमन मिट जाता है और वो काल का भय छोड़कर वहीं वास करता है। मन के पीछे सारा संसार भूला हुआ है। जो मन को पहचान ले, वही चतुर सुजान है। मन को जाने बिना पार नहीं हुआ जा सकता है, फिर-फिर संसार-सागर में आना पड़ेगा। इसलिए सब भ्रम छोड़कर गुरु-शब्द से प्रेम करो। मन को पहचानकर स्थिर कर लो, फिर ज़रा-मरण नहीं होगा। मन ही करता है, वही सब काम सँवारता भी है और वहीं ले जाकर नरक में भी डाल देता है। मन ही तीर्थ आदि में घुमाता है, मन अपनी पूजा आप करवाता है। सनक, सनन्दन, योगी आदि सबने मन को ही जगाया। मन को कुछ देर के लिए मारकर फिर मन में ही समाए, मन से ही फिर सारे संसार को समझाने लगे। वेद, कितेब, षट् दर्शन आदि सब मन से ही जाने जाते हैं। नवधा भक्ति (भक्ति के नौ प्रकार) भी मन ही समझाता है, पर सच्ची भक्ति कोई बिरला ही पाता है। जब तक जीव सार शब्द की प्राप्ति नहीं कर लेता, यह अमर लोक नहीं जा सकता है।

अगम पुर जावो हो

अवगत अपरंपार, पार नहिं पावै हो।।
नाद बिंद का जीव, भरम डहकावै हो।।

मन मनसा नहिं ठौर, ध्यान कहा धारेयो हो।।
का सूँ करूँ फरियाद, कहो क्या करिये हो।।
तज दुरमत का सँग, रंग नहिं लागै हो।।
कोट जनम का स्वान, हाड़ नहिं छाड़ै हो।।
बिषै हलाहल खाय, जगत सब धूता हो।।
ज्यूँ हिरना के संग, सिकारी कूता हो।।
कौवा तजै न बीठ, हंस कस होई हो।।
अंध गुरु का चेल, खेल सब खोई हो।।
बैठा मंझ मँझार, मूसटै खाई हो।।
बाहर किया अचार, बूड़ी पंडिताई हो।।
बक मीन का ध्यान, नहीं नर धरिये हो।।
भौसागर में आन, बहुर क्यूँ परिये हो।।
पारस पद कूँ परस, सुरत ठहरावो हो।।
निरत निरंतर लाय, अगमपुर जावो हो।।
कहता दास गरीब, सुदेस दिवाना हो।।

अभय लोक सिधारै सोई

जो सत्य शब्द बिचारै कोई। अभय लोक सिधारै सोई।।
कहन सुनन किमि करि बनि आवै। सत्य नाम निजु परचै पावै।।
लीजै निरखि भेद निजु सारा। समुझि परै तब उतरै पारा।।
कंचन डाहे पावक महँ जाई। ऐसे तन के डाहहु भाई।।
जो हीरा धन सहै घनेरा। होय हिरम्बर बहुरि न फेरा।।
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी।।
पारस शब्द कहा समुझाई। सतगुरु मिलै तो देहि दिखाई।।
सतगुरु सोई जो सत्य चलावै। हंस बोधि छप लोक पठावै।।
घर घर ज्ञान कथै बिस्तारा। सो नहिं पहुँचै लोक हमारा।।

एक नाम प्रेम लव लावै। संत साध के दरसन पावै।।
पावै दास मुक्ति का भेवा। सुजन निरखि करै निजु सेवा।।

जिसके पास सार नाम होता है, वही अमर लोक जाता है। यह पारस नाम सद्‌गुरु के पास होता है। सद्‌गुरु वही है, जो हंस को सत्य नाम पर दृढ़ करके अमर लोक ले जाता है।

पारखिया सत्यलोक के

ज्ञान तुरंगम पाड़िया, ताजी दरियाई।
पासर घाली प्रेम की, चित चाबुक लाई।।
असंख युग परलै गये, जब के गुन गाऊँ।
ज्ञान गुरज है दस्त में, ले हंस चिताऊँ।।
सील हमारा सेल है, औ छिमा कटारी।
तत्त तीर तक मार हूँ, कहैं जात अनारी।।
बुधि हमारी बंदूक है, दिल अंदर दारू।
प्रेम पियाला सार का, चित चकमक झारू।।
तत्त हमारी तेग है, जो असल असीलं।
सूरे सनमुख लेत हैं, कायर मुख पीलं।।
घायल घूमै अरस में, जिस लगी करारी।
औषध निःचा नाम है, जिन्ह पीड़ पुकारी।।
पारखिया सत्यलोक के, रनजीत पठाये।
कहता दास गरीब है, गुरुगम से आये।।

अब मैं अमर लोक घर पायो

अब मैं अमर लोक घर पायो।।
जब से दया भई सतगुरु की, अभय निशान बजायो।
काम क्रोध की गागरि फूटी, ममता मोह बहायो।।

तजि प्रपंच विविध विधि किरिया, सहज में चित्त समायो।।
प्रेम प्रीत किया सतगुरु से, निर्भय ज्ञान लखायो।
हद को छाड़ि बेहद धरि आसन, बैठि समाधि लगायो।।
चंद न सूर दिवस न रजनी, तहाँ हमें पहुँचायो।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जहाँ गये नहिं आयो।।

जब सद्गुरु की कृपा हो गयी को काम, क्रोध आदि छूट गये। सद्गुरु से प्रीत करने का यह लाभ हुआ कि निर्मल ज्ञान की प्राप्ति हो गयी और वो ऐसी जगह ले गया, जहाँ न चाँद था, न सूर्य, न रात थी, न दिन। हम ऐसे अमर लोक में पहुँच गये, जहाँ से वापिस संसार में आना समाप्त हो गया।

अवधू हंस देस है न्यारा

अवधू हंस देस है न्यारा॥
तीरथ ब्रत औ जोग जाप तप, सुरति निरति से न्यारा।
तीन लोक से बाहर डोलै, करम भरम पचि हारा॥
कोटि कोटि मुनि ब्रह्मा होइगे, कोई न पाये पारा।
मंतर जाप उहाँ ना पहुँचै, सुरति करो दरबारा॥
सुख सागर में बासा कीजै, मुकता करो अहारा।
बंकनाल चढ़ि गरजन गरजै, सतगुरु अधर अधारा॥
कहै कबीर सुनो हो अवधू, आप करो निरवारा।
हंसा हमरे मिले हंसन में, पुनि न लखे भवजारा॥

वो अमर लोक न्यारा है। तीर्थ, ब्रत, योग, जप, तप, ध्यान आदि द्वारा उसे नहीं पाया जा सकता है। वो तीन लोक के बाहर है। करोड़ों करोड़ों ब्रह्मा हो गये, पर आज तक कोई उसका पार नहीं पाया। वहाँ मंत्र, जाप आदि नहीं पहुँच सकते हैं। वहाँ पहुँचने के लिए सद्गुरु का सहारा लेना पड़ता है। फिर वहाँ पहुँचने वाला दुबारा भवसागर में नहीं आता है।

चौथे लोक पुरुष वह रहई

सतगुरु जानि के बंदहु पाँऊ। भरम त्यागि तब हिरदै लाऊ।।
सतगुरु समुझि परै उह देसा। प्रेम सुखी जब पाउ संदेसा।।
आदि अंत जो पूछै आई। छप लोक कहौ समुझाई।।
राह देखाय दीढ़ करु ज्ञाना। जम कै मान मरदि धरु ध्याना।।
डार पताल सोर असमाना। ताहि पुरुष कै करौं बखाना।।
आदि अंत सत्य पुरुष अमाना। ब्रह्म एक है सब घट जाना।।
तीनि लोक जम दारुन अहई। चौथे लोक पुरुष वह रहई।।
अजर अमर हंसा तहँ होई। अमृत झरि चाखै सब कोई।।
सो सुख मुख नहिं जात बखानी। बूझै सो जो निर्मल ज्ञानी।।
सत्यलोक सत्य का बंधा। बिनु सतगुरु जस जड़मति अँधा।।

चौथे लोक में वो परम पुरुष रहता है। इस तीन लोक में तो कठिन काल का राज्य है, जिससे बचकर चौथे लोक पहुँचने वला हंस सदा के लिए अमर हो जाता है। वहाँ पहुँचकर वो जो आनन्द पाता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। पर बिना सद्गुरु के संसार का अज्ञानी जीव वहाँ नहीं पहुँच सकता है।

सत्य लोक से सुरति करी

साहिब मोहिं दरसन दीजे होष करुणा निधि मेहर करीजे हो।।
पपिहा के चित्त स्वाँति बसै, भावै नहिं जल दूजा हो।
जैसे काग जहाज चढ़े, वा को और न सूझा हो।।
बार बार विनती करूँ, मेरी अरज सुनीजे हो।
भवसागर से काढ़ि के, अपना करि लीजे हो।।
सत्य लोक से सुरति करी, तब जग में आये हो।
जम से जीव छोड़ाइ के, धर्मनि मन भाये हो।।

धर्मदास जी साहिब से विनती करते हुए कह रहे हैं कि आप जीवों को काल से छुड़ाने के लिए अमर लोक से आए हैं, इसलिए मुझपर भी कृपा करो और काल से छुड़ाकर अपना बना लो।

भौजल तजि सत्यलोकहि आवै

भौजल तबही उतरै पारा। जब मिलै सतगुरु कनिहारा।।
बिन कनिहार न भौजल तरही। डूबहि फिर फिर देही धरही।।
जो कोई खोज लीन्ह कनिहारा। नाम जहाज चढ़ि उतरै पारा।।
सतगुरु मिलै सत्यनाम समावै। भौजल तजि सत्यलोकहि आवै।।
भौजल का बिसरै सब साज। सुख सागर बिलसै सुख राज।।

जब सद्गुरु की प्राप्ति होती है, तभी जीव भवसागर से छूटकर सत्यलोक में जाता है।

सत्य शब्द लै उतरहु पारा

सुमिरहु सत्य पद प्रान अधारा। सत्य शब्द लै उतरहु पारा॥
गुरु के बचन पावल जब बीरा। अचल अमर निहचै धर थीरा॥
हंसा जाय मिले करतारा। बहुरि न आवै एहि संसारा॥
तीनि लोक से न्यारे डेरा। पुरुष पुरान जहँ हंस घनेरा॥
गुरु के बचन सिष्य जो धरई। जाय छप लोक नरक नहिं परई॥
कह दरिया जब बीरा पावै। जाय सतलोक बहुरि नहिं आवै॥

दरिया साहिब कह रहे हैं कि सार शब्द से ही इस संसार से पार हुआ जा सकता है। जब सद्गुरु से नाम की प्राप्ति होती है, तभी उस घर को पाया जा सकता है, हंस जाकर उस परम-पुरुष में मिल जाता है और फिर इस संसार में नहीं आता। वो देश तीन लोक से परे है, जहाँ परम-पुरुष और उनके हंस रहते हैं। जो शिष्य गुरु बचनों का पालन करता है, वो सत्य-लोक में चला जाता है, वो फिर नरक में नहीं गिरता। दरिया

साहिब कहते हैं कि जब नाम की प्राप्ति होती है, तब ही हंस सत्य-लोक में जाकर निवास करता है, फिर इस संसार में नहीं आता।

तिनका मूँदा द्वारा

अवधू निरंजन जाल पसारा।।
स्वर्ग पताल जीव मृत-मंडल, तीन लोक बिस्तारा।
ब्रह्मा बिस्नु सिव प्रगट कियो है, ताहि दियो सिर भारा।।
ठाँव ठाँव तीरथ ब्रत थाप्यो, ठगने को संसारा।
माया मोह कठिन बिस्तारा, आपु भयो करतारा।।
सतगुरु शब्द को चीह्नत नाहीं, कैसे होय उबारा।
जारि भूँजि कोइला करि डारै, फिर फिर लै अवतारा।।
अमर लोक जहँ पुरुष बिराजै, तिन का मूँदा द्वारा।
जिन साहेब से भये निरंजन, सो तो पुरुष है न्यारा।।
कठिन काल तें बाचा चाहो, गहो शब्द टकसारा।
कहैं कबीर अमर करि राखौं, मानौ शब्द हमारा।।

जीवों को कैद करने के लिए काल निरंजन ने स्वर्ग, पाताल, मृत्यु लोक सब जगह अपना जाल फैलाया हुआ है और ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति करके इसका भार उन्हें सौंप दिया है। संसार को ठगने के लिए जगह-जगह तीर्थ, ब्रत आदि की स्थापना करके उन चीजों में उलझा दिया है। माया, मोह आदि का जाल फैलाकर स्वयं परमात्मा बन गया है। सद्गुरु समझा रहे हैं, पर यदि जीव उनके शब्दों को पहचान नहीं पायेगा, तो उसका कल्याण नहीं हो पायेगा। यही काल निरंजन बार-बार अवतार धारण करके जीवों को अच्छा बनकर दिखाता है और फिर अंत में भून-भूनकर खाता है। जिस साहिब से इस काल पुरुष की उत्पत्ति हुई है, जो साहिब अमर लोक में रहते हैं, उनका द्वार ही बंद करके

रखा हुआ है। साहिब कह रहे हैं कि यदि इस भयंकर काल पुरुष से बचना चाहते हो तो सद्‌गुरु के सार नाम को ग्रहण करो, फिर तुम्हें सदा के लिए इससे दूर ले जाकर अमर कर दूँगा।

तन छूटे सत्य लोक निवासा

सतगुरु जानु सत्त सुख बानी। सब्द साँच बिरला केहु मानी।।
बिनती करौं दुनौं कर जोरी। सत्य साहबहि ज्ञान की डोरी।।
मन में माला प्रेम रस भीना। सुरति चीन्ह सब्द लौ लीना।।
साँच सब्द बूझौ लव लाई। हंस बोधि छप लोक पठाई।।
बूझो दिल मन आपन खोली। सत्य लोक सत्य नाहीं डोली।।
यह कुल कर्म छाड़ि सब देहू। सतगुरु चरन सब्द तब लेहु।।
अमृत प्रेम पियहु तुम दासा। तन छूटे छप लोक निवासा।।
जब पाँजी पर पहुँचै जाई। माँगै मोहर देउ दिखाई।।
सतगुरु छपा देखि सकुचाई। गावहिं मंगल कामिनी आई।।
बहुत आनन्द सुख भयो बिलासा। जरा मरन मेटा जम त्रासा।।
कोटि कला तहं देखो जाई। चलत फिरत सुख बहुत सोहाई।।
हंस रूप देखि रहा लोभाई। अमृत बैन रहा छबि लाई।।
अति आनन्द सुख बरनि न जाई। अम्मरपुर अमृत रस पाई।।
कोटिन कामिनी मंगल गावैं। हीरा मानिक सेज बिछावैं।।
चँवर डोलावहिं बहु विधि भांति। सब हंसा बैठे एक जाति।।

कुल की रीति और कर्म त्यागकर सद्‌गुरु के सार शब्द से प्रेम करो तो निश्चय ही शरीर के छूटने के बाद अमर लोक में निवास करोगे। रास्ते में काल जीव को रोकता है, पर **नाम दान के समय सद्‌गुरु शिष्य के शीश पर अपना हाथ रखता है, सद्‌गुरु का वो छापा देखकर काल राह छोड़ देता है** और हंस सदा के लिए अमर लोक में पहुँचकर परमानन्द में समा जाता है।

उस घर का भेद न कोउ जानै

उस घर का भेद न कोउ जानै, जहवाँ सेती जिव आवता है।
सब खोजत खोजत मूइ गये, उस घर का भेद न पावता है॥
अघबीच सेत सब लोग फिरे, उत्ती सेती ठहरावता है।
पलटू हमने तहकीक किया, सब और का और बतावता है॥

पलटू साहिब कह रहे हैं कि यहाँ से जीव आया है, उस घर का भेद कोई नहीं जानता है। सभी उसका भेद खोजते-खोजते मर गये, पर किसी ने भी उस घर का भेद नहीं पाया। कुछ जो उसे खोजने गये, वो आधे रास्ते से ही वापिस आ गये, केवल बातों से वो कहते हैं कि हम पहुँच चुके हैं। पलटू साहिब कहते हैं कि मैंने तहक़ीक़ात करके देख लिया है, सभी कुछ-का-कुछ ही बताते हैं, **केवल पढ़-पढ़कर ही सुनाते हैं, खुद पहुँचे नहीं होते।**

निरंकार अकार न माया

साधू मत भेद न पाया, निरंकार अकार न माया॥
काल जाल निरंकार कहावे, या को नेत गुहराया।
संतन पंथ अंत मति न्यारा, जिन आदि अनादि सुनाया॥
पाँच तत्त बैराट बनाया, पिरथी जल पवन समाया।
अगिनि अकास भास मिलि पाँचों, सो यहि विधि अंड कहाया॥
निरंकार आकार भया जब, या से उपजी माया।
बन ब्रह्मण्ड अंड सब कीन्हा, रज तम सत उपजाया॥
ब्रह्मा बिस्नु नाम गुन केरा, सरगुन गाँठ बँधाया।
सास्त्र पुरान कीन्ह मुनि कारन, विधि ने वेद चलाया॥
रच्यो बैराट स्वास विधि ब्रह्मा, नाद ने वेद कहाया।
नाभि कँवल खोजि पचि हारे, सोइ ब्रह्मा आप हिराया॥
अंड ब्रह्मण्ड तत्त नहिं कीन्हा, नहिं बैराट न काया।
जब का अंत संत समझावें, सोइ तुलसी संत सुनाया॥

तुलसी साहिब कह रहे हैं कि संत की बातें वेद भी नहीं जानता है, क्योंकि जिसकी बात वे करते हैं, वो निराकार, आकार और माया—तीनों से परे है। जिसके लिए वेदों ने नेति-नेति कहा, वो निरंकार काल का जाल है। पर संतों की राह, संतों की बातें निराली हैं, जिन्होंने अनादि पुरुष का संदेश दिया है। पाँच तत्वों का यह वैराट बना है। जब निरंकार से माया की उत्पत्ति हुई तो वो आकार रूप में आया। फिर उसने सत, रज और तम—तीन गुणों (त्रिदेव) की उत्पत्ति की। इस तरह जीव की सगुण के साथ गाँठ बँध गयी। ब्रह्मा जी ने वेदों का ज्ञान संसार में चलाया। लोग नाभि चक्र में खोज-खोज कर मर गये, पर वहाँ रहने वाले भी खोज रहे थे। वहाँ से यह ब्रह्माण्ड, यह काया आदि नहीं हुई। जिस आदि समय की बात संत करते हैं, तुलसी साहिब कहते हैं कि मैंने भी वहाँ की बात सुनाई है।

नैहरवा हमका नहिं भावै

नैहरवा हमका नहिं भावै।।
साँई की नगरी परम अति सुंदर, जहँ कोई जावे न आवै।
चाँद सूरज जहाँ पवन न पानी, को संदेश पहुँचावै।
रद यह साई को कौन सुनावै।।
आगे चलो पंथ नहिं सुझै, पीछे दोष लगावै।
केहि विधि ससुरे जाव मोरी सजनी, बिरहा जोर जनावै।
विषय रस नाच नचावै।।
बिन सद्गुरु अपनो नहिं कोई, जो यह राह बतावै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, अपने में प्रीतम पावै।
तपन यह जिय की बुझावै।।

जीवात्मा कहती है कि यह संसार रूपी मायका मुझे अच्छा नहीं लगता। सद्गुरु का अमर लोक बड़ा सुंदर है, जहाँ से फिर कभी आना-जाना नहीं होता। वहाँ सूर्य, चाँद, पानी, हवा आदि कुछ नहीं है। कौन

मेरा संदेश वहाँ पहुँचायेगा, कौन मेरे प्रभु को मेरा दर्द सुनायेगा! मैं परमात्मा की राह में आगे बढ़ती हूँ तो रास्ता नहीं सूझता है और यदि पीछे मुड़ जाऊँ तो दोष लगता है। हे सखी! मैं किस तरह अपने ससुराल अमर लोक में जाऊँ! इधर विरह की पीड़ा भी बढ़ गयी है, पर विषय-विकार भी बहुत नाच नचा रहे हैं। सद्गुरु के बिना अपना कोई नहीं है, जो वहाँ जाने की राह बताए। साहिब कहते हैं कि विचार करो, अपने में ही यह जीवात्मा अपने परमात्मा रूपी प्रियतम को पायेगी और उसकी प्यास बुझेगी।

सुरति से देखि ले वहि देस

सुरति से देखि ले वहि देस॥
देखत देखत दीसन लागे, मिटिगे सकल अँदेस॥
वहँ नहिं चन्द वहाँ नहिं सूरज, नाहिं पवन परवेस॥
वहँ नहिं जाप वहाँ नहिं अजपा, निःअच्छर परबेस॥
वहँ के गये बहुरि नहिं आये, नहिं कोउ कहा सँदेस॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गहु सतगुरु उपदेस॥

कह रहे हैं कि सुरति से उस अमर-लोक को देख लो। वहाँ चाँद, सूर्य आदि कुछ भी नहीं है। वहाँ जाप, अजपा की स्थिति भी नहीं है। वहाँ जाकर फिर वापिस नहीं आना है। लेकिन वहाँ का संदेश कोई नहीं देता है। साहिब कह रहे हैं कि मेरी बात को सुनकर उसपर विचार करो और सद्गुरु का उपदेश ग्रहण करो।

यह मंगल सत्य लोक के

लगन लगी सत्य लोक, सुकृत मन भावहीं।
सुफल मनोरथ होय, तो मंगल गावहीं।।
चलु सखि सुरति संजोय, अगम घर उठि चलो।

हंस सरूप सँवारि, पुरुष सों तुम मिलो।।
कनन पत्र पर अक, अनूपम अति कियो।
तुमहिं सकल संदेस, लगन पिय लिख दियो।।
अच्छत थार भराय, तो चौक पुरावहीं।।
हीरा हंस बिठाय, तो सब्द सुनावहीं।
अगर अमी भरि कुंभ, रतन चौरी रची।
हंस पढ़ै तहँ सब्द, मुक्ति बेदी रची।।
हस्त लिये सत केल, ज्ञान गढ़ बंधना।
मोच्छ सरूपी मौर, सीस सुंदर बना।।
सुरति पुरुष सों मेल, तो भाँवरि परि गई।
अमर तिलक तांबूल, सुघर माला दई।।
दीन्हो सुरति सुहाग, पदारथ चारि को।
निस दिन ज्ञान बिचार, शब्द निर्वार को।।
यह मंगल सत्य लोक के, हंसा गावहीं।
कहैं कबीर समुझाय, बहुरि नहिं आवहीं।।

हे जीवात्मा, अमर लोक में जाने के लिए लग्न लगाओ। सद्‌गुरु ने नाम रूपी अमोलक हीरा देकर वहाँ तीन लोक की लग्न निकाल दी है। अब तुम उन सद्‌गुरु के बल पर काल को जीत लोगे। तुम रात-दिन सद्‌गुरु के नाम का सुमिरन करो। ऐसे में तुम उस अमर लोक में पहुँच जाओगे और फिर कभी वापिस नहीं आओगे।

चल हो सजन वो देस अमर है

उतर दिसा पंथ अगम अगोचर, अधर अंग इक देस हो।
चल हो सजन वो देस अमर है, जहँ हंसन को बास हो॥
आवै जाय मरै ना कबहूँ, रहै पुरुष के पास हो।

आलस मोह एको नहिं व्यापै, सुपन सुरति जास हो॥
पीवो हंस अमृत सुख धारा, बिन सुरही के दूध हो।
संसय सोग कछू नहिं मन में, बिन मुक्ता गुन सूझ हो॥
सेत सिंहासन सेत बिछौना, जहँ बसै पुरुष हमार हो।
अच्छर मूल सदा मुख भाखौ, चित दे गहहु सुहाग हो॥
सेत तँबूल समरथ मुख छाजै, बैठे लोक मंझार हो।
हंसन के सिर मुकुट बिराजै, मानिक तिलक लिलार हो॥
आमिनि ह्वै उतरे भवसागर, जिन तारे कुल बंस हो।
सतगुरु भाव कछनी तन कपरा, मिलि लेहु पुरुष कबीर हो॥

हे हंसा, उस अमर लोक में चल, जहाँ हंस रहते हैं। वहाँ उस परम पुरुष के पास वास करो, जो कभी संसार में न जन्म लेता है, न कभी जिसका नाश होता है। वहाँ पहुँचकर अमृत पान करो और हमेशा के लिए आनन्द में समा जाओ।

छप लोक सब ऊपर होई

छप लोक सब ऊपर होई। पावै अमृत जुग जुग सोई॥
जाँ गुरु ज्ञान मिलै निजु सारा। ज्ञान गम्मि का करै बिचारा॥
तीनि लोक है मन कर ठाटा। मनहिं बिसंभर रोकै बाटा॥
ऐसन जीवन जीवै जोगी। सब्द नाम तन रहै बियोगी॥
मुवै न जिवै आवै नहिं जाई। सब घट आपै चुनि चुनि खाई॥
देखै कोई नहिं सभै चोरावै। मुनि ज्ञानी कोई भेद न पावै॥
बड़े जोगी यह जोग बिधाना। उनहुँ के घैंच मारि यम बाना॥
कोई नहिं बाचे यम के फाँसा। जो न होय सतगुरु कै दासा॥
सतगुरु कै गति पावै कोई। जाय छप लोक सिधारै सोई॥
गहै प्रेम होय निर्मल सरीरा। मेटि जाय सब जम कै पीरा॥

कह रहे हैं कि अमर लोक सबसे ऊपर है। जो वहाँ पहुँचता है, वो अमृत का पान करता है। तीन लोक तो मन का स्थान है, यही अमर

लोक का रास्ता रोके हुए है। यह सबके घट में समाया हुआ है और सब जीवों को चुन-चुनकर खा जाता है। ज्ञानी, मुनि, पंडित आदि कोई भी इसका भेद नहीं पाता है। बिना सद्गुरु की शरण में आए इससे नहीं बचा जा सकता है। जो सद्गुरु से सच्चा नाम पा लेता है, वो काल के सब कष्टों से छूटकर अमर लोक चला जाता है।

चौथे लोक के मरम न जाना

भेद निरखि लेहु सो निजु सारा। चाँदी जारहु अँउट कसारा।।
खोटा काँजी दुरि कर दीन्हा। असल ज्ञान निजु परचै लीन्हा।।
साहब परचै दीन्ह देखाई। सब्द भेद निजु कहा बुझाई।।
सतगुरु गुरु की रहनि निनारा। मिलै सब्द पावै निजुसारा।।
चौजुग चाहि जो कीन्ह निबेरा। जो बूझै सो पहुँच सवेरा।।
तीनि लोक जम जालिम घेरा। मुनि पंडित भो यम कै चेरा।।
सत्य पुरुष सत्य लोकहिं डेरा। कया कबीर करहिं जग फेरा।।
अभय लोक जहँ भय नहिं होई। अमृत प्रेम पियै सब कोई।।
जाहि लोक लें हम चलि आई। तोहि लोक बिरला जन जाई।।
ज्ञान कथे जनि भूलै कोई। सब्द विचार करहि नर लोई।।
मोहिं से पूछहुँ ज्ञान करारा। आदि अंत कहौं विस्तारा।।
तीनि लोक वेद इह कहई। चौथे लोक पुरुष ओइ रहई।।
अजर अमर लोक बिस्तारा। ई सब किरतम कीन्ह पसारा।।
हरि भगतन भगताई कीन्हा। तिरगुन फंद तेह नहिं चीन्हा।।
तिरगुन ते है ओइ गुन न्यारा। अजर अमर हहिं सत करतारा।।
हंस बंस तहँ पहुँचै जाई। अजर अमर तहाँ होई जाई।।
सत्य सब्द बूझै चित लाई। सो हंसा निर्मल होई जाई।।
अमर लोक महँ पहुँचै दासा। देखहि अविगति अजब तमासा।।
सतगुरु सबदहि मानु सुभागा। निर्मल होय मल कबहिं न लागा।।

गर्व गुमान भुले सब ज्ञानी। विद्या वेद पढ़ि मरम न जानी।।
मोटा मन का फिरै गँवारा। जो मन मिलै मिलै करतारा।।
पानी पवनहुँ ते मन तेजा। जहाँ कहो तहवाँ मन भेजा।।
सो मन मिलेऊ दरियादासा। सबद देखि मिटि जम के त्रासा।।
तीन लोक तो वेद बखाना। चौथे लोक कै मरम न जाना।।

तीन लोक में जालिम काल का घेरा है। सब मुनि, ऋषि आदि उसे के चेले हैं, उसी की भक्ति कर रहे हैं। परम पुरुष अमर लोक में रहता है। वहाँ कोई भय नहीं है। साहिब कह रहे हैं कि जिस लोक से चलकर मैं आया हूँ, उसे कोई बिरला ही जानता है। तीन लोक की बात वेद में है, पर परम पुरुष चौथे लोक में रहता है। **उस देश में पहुँचकर हंस अमर हो जाता है, फिर जन्म मरण में नहीं आता। सार नाम को पाकर ही हंस उस अमर लोक में पहुँच पाता है।** सद्गुरु का शब्द मानने वाला धन्य हो जाता है। वो फिर सदा के लिए निर्मल होकर उस लोक में समा जाता है। तीन लोक का तो वेदों में बखान है, पर उस चौथे लोक का भेद नहीं जानते हैं।

तेरो सोहाग सोहाय

तेरे गवने का दिन गनिचाना, सोहागिनि चेत करौ री।।
बालापन तन खेल गँवायौ, तरुनै चाल कुचाल।
का उत्तर देइहौ रे सजनी, पिय पूछै जब हाल।
समुझ मन का करिहौ री।।
भौसागर औगाध भँवर है, सूझै बार न पार।
केहि विधि पार उतरबौ सजनी, नहिं खेवट नहिं नाव।
खेवैया बिन का करिहौ री।।
सील सुमति की चुनरी पहिरो, सत मति रंग रँगाय।
ज्ञान तेल सों माँग सँवारौ, निर्भय सेंदुर लाय।

कपट पट खोल धरौ री।।
पिय घर चेत करौ री सजनी, नैहर माहिं निबाह।
नैहर नाम कहा लै करिहौ, मरिहौ भर्म भुलाय।
पुरुष बिन का करिहौ री।।
कहैं कबीर सोई सत्यवंती, पिव के रंग रँगाय।
अमर लोक हाथै करि लैइ है, तेरो सोहाग सोहाय।।

काल पुरुष के संसार को छोड़कर सत्पुरुष के दरबार में चलने रूपी गवने का दिन पास आ गया है, अब तो सुरति रूपी सुहागिन संभल जाओ। बचपन तो खेल में गँवा दिया और जवानी में बुरे कार्यों में उलझ गयी। पर जब परम पुरुष रूपी प्रियतम हाल पूछेंगे तो क्या जवाब दोगी! फिर क्या करोगी? यह भवसागर अपार है, जिसका कोई पार नहीं सूझ रहा है और तुम्हारे पास न केवट है न नाव। बिना सद्गुरु रूपी केवट के तुम कैसे पार उतरोगी! भीतर के पट खोलकर तुम शील और सुमति की चुनरी ओढ़ो और उसे सत्य के रंग में रँगा लो। अब परम पुरुष रूपी प्रियतम के घर में चलने की सुधि करो, काल निरंजन के संसार रूपी मायके में रहकर क्या करोगी! यहाँ तो भ्रम में ही भूली रहोगी। प्रियतम के बिना तो सुख नहीं मिल पायेगा। साहिब कह रहे हैं कि वही पतिब्रता है, जो सद्गुरु के रंग में रँग कर अमर लोक को पा लेती है। ऐसी पतिब्रता बनकर परम पुरुष की प्यारी बनो और अमर लोक रूपी महल में निवास करो।

सतगुरु सोई दया करि दीना

सतगुरु सोई दया करि दीना, पाते अनचीन्हा अनचीन्हा।।
बिन पग चलना बिन पग उड़ना, बिना चोंच का चुगना।
बिन नैनन का देखन पेखन, बिन श्रवण का सुनना।।
चंद्र न सूर दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लौ लाई।

बिना तन अमृत रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई।।
जहाँ हरष तहाँ पूरण सुख है, यह सुख कासो कहना।
कहैं कबीर बर बल सतगुरु की, धन्य शिष्य का लहना।।

सद्गुरु ने दया करके वो ज्ञान दे दिया, जिससे आज तक अपरिचित थे। अब तो वहाँ सुरति लग गयी है, जहाँ न सूर्य है, न चाँद है, न दिन है, न रात है; बिना शरीर के अमृत भोजन करते हैं; बिना जल के प्यास बुझ गयी है। यहाँ खुशी है, वहाँ पूर्ण सुख है। यह सुख किसे कहा जाए! कोई समझता नहीं है। साहिब कहते हैं कि यह स्थिति सद्गुरु की ताक़त से हो पाती है। वो शिष्य धन्य है, जो इस स्थिति तक पहुँच पाता है।

सत्यलोक पहुँचाय को नहिं लावौं देरा

काटौं फंदा कर्म का, जो होवै मेरा।
उलटि लिखौं तेहि भाल में कोइ सकै न फेरा।।
जा खोजत ब्रह्मा भुले सुर मुनि बहुतेरा।
सो पद दैहौं ताहि को जिन मो को हेरा।।
मरन जियन में सब परा दुख सहत घनेरा।
करम के बसि फाँसी फँसे मुए गुरु औ चेरा।।
भरम छुड़ावौ ताहि को आवागमन निबेरा।
सत्यलोक पहुँचाय को नहिं लावौं देरा।।
अमर लोक बैठाय के, तहवाँ द्यों डेरा।
सुखी करौं तेहि जन्म को जो पलटू केरा।।

पलटू साहिब कह रहे हैं कि जो जीव मेरी (सद्गुरु की) शरण में आ जाता है, उसके कर्म का जाल काट देता हूँ। फिर उसके लेखे को बदलकर ऐसा लिख देता हूँ कि कोई मिटा नहीं सकता है। जिस परम तत्व को खोजते-खोजते ब्रह्मा आदि भी

भूले हुए हैं, उस पद में पहुँचा देता हूँ। संसारी गुरु और चेले सब जन्म मरण में फँसे हुए हैं, सब कर्म जाल में फँसे हुए हैं। मैं जीव के सब भ्रम छुड़ाकर अमर लोक में पहुँचा देता हूँ और पहुँचाने में देर भी नहीं लगाता हूँ।

साहिब कौन देस मोहिं डारा

साहिब कौन देस मोहिं डारा।।
वह तो देस अमर हंसन को, येहि जग काल पसारा।।
देवहु सब्द अजर हंसन को, बहुरि न ह्वै अवतारा।।
निरगुन सरगुन दुंद पसारा, परि गये काल की धारा।।
जहाँ देस है सत्य पुरुष का, अजर अमी का अहारा।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, अबकी अरज हमारा।।

सत्य लोक बसेरा

मोर मन लागा साहिब से, बंदी छोर कबीरा।।
सतगुरु सरनै मैं गई, सब दुख हरि लीन्हा।
करम भरम सब मेटि के, निरमल करि दीन्हा।।
तीन लोक के बीच में, जम कातर दीन्हा।
ता से मोहिं छुड़ाई के, आपन करि लीन्हा।।
सतगुरु सब्द सुनाइ के, पारस करि दीन्हा।
कागा बरन मिटाई के, हंसा करि लीन्हा।।
काम क्रोध सब त्यागि के, बन हंस गँभीरा।
सब्द हमारा मानि ले, गुरु कहत कबीरा।।
धरमदास की बीनती, संतन महँ हेरा।
जाति बरन कुल त्यागि के, सत्य लोक बसेरा।।

हंसा सुधि करो आपन देश

हंसा सुधि करो आपन देश।।
जहाँ से आयो सुधि बिसरायो, चले गयो परदेश।।
वहि देशवा में जोते न बोवै, मोती फरे हमेश।।
वहि देसवा में मरै न बिगड़े, दुख न पड़त कलेश।।
चलो हंसा बसो मान सरोवर, मोती चुगो हमेश।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, अजर अमर वह देश।।

हे हंसा, अपने देश को याद कर वहाँ चल। तू परदेस में आकर अपने देश की सुधि खो बैठा है। वहाँ बिना बोये सदैव मोती उगते हैं। वहाँ न जन्म है, न मरण है, न कोई दुख ही है। वो एक अमर देश है।

हम बासी उस देश के

हम बासी उस देश के पूछता क्या है,
चाँद ना सूरज ना दिवस रजनी।
तीन की गम्य नहिं नाहिं करता करै,
लोक ना बेद ना पवन पानी॥
सेस पहुँचै नहीं थकित भइ सारदा,
ज्ञान ना ध्यान ना ब्रह्म ज्ञानी।
पाप ना पुन्न ना सरग ना नरक है,
सुरति ना सबद ना तीन तानी॥
अखिल ना लोक है नाहिं परजंत है,
हद अनहद ना उठै बानी।
दास पलटू कहै सुन्न भी नाहिं है,
संत की बात कोउ संत जानी॥

पलटू साहिब कह रहे हैं कि हम तो उस अमर लोक के वासी है, जहाँ सूर्य-चाँद, रात-दिन आदि नहीं हैं, जहाँ त्रिदेव भी नहीं हैं और

सृष्टि का कर्त्ता मन भी नहीं है। न लोक है, न वेद है, न पवन है, न पानी है, शेष, शारदा आदि की पहुँच से परे है वो देश। **जहाँ ज्ञान, ध्यान आदि भी नहीं हैं और न ही ब्रह्म ज्ञानी है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक भी नहीं हैं। सुरति, शब्द, लोकालोक, शून्य, अनहद धुनें, वाणी आदि भी वहाँ नहीं हैं।** पलटू साहिब कह रहे हैं कि संतों की ये बातें कोई संत ही समझ सकता है।

सुरति निरत दोउ मतो करत है

सुरति निरत दोउ मतो करत हैं, चलो सतगुरु पै जइये हो॥
सतगुरु चीन्हि चरन चित लैये, दृष्टि से दृष्टि मिलइये हो॥
सतगुरु साह साध सौदागर, भक्ति पटो लिखवइये हो॥
मन मानिक की खुली किवरियाँ, चढ़ गइ झमकि अटरिया हो॥
नहिं वहँ डोरि नहिं वहँ रसरी, अमर लोक कस पइये हो॥
है वहँ डोरि सुरति कर सोझी, गुरु के शब्द चढ़ि जइयो हो॥
घर है रमनी मेरो बगर रमानो, फूल रही फुल बगिया हो॥
अछै कमल पर बहै सुरसरि, तहँ बैठ हंस नहइये हो॥
धरमदास की अरज गुसाईं, आवागमन मिटइये हो॥

आध्यात्मिक खेल का वर्णन करते हुए धर्मदास जी कह रहे हैं कि सुरति और निरति दोनों सलाह करती हैं कि सद्गुरु के पास चलते हैं, सद्गुरु को पहचान कर उनके चरणों में रहेंगी और उनकी दृष्टि से दृष्टि मिलायेंगी। सद्गुरु तो भक्ति का सौदागर है, उनसे भक्ति का पट्टा लिखवा लेंगी। मन-मानिक की खिड़की खुली हुई थी, सो वो झमक-झमक करती हुई अटारी में चढ़ गयी। पर वहाँ आगे न कोई डोर है, न रस्सी, फिर अमर लोक में कैसे जाए? खुद ही सुझाते हुए कह रहे हैं कि वहाँ सीधी ऊपर की ओर सुरति करो और गुरु के शब्द पर चढ़ जाओ और उसी पर बैठकर चलो। वहाँ आगे आध्यात्मिक गंगा बह रही है, वहाँ जाकर हंस नहाता है और उसका आवागमण मिट जाता है।

साहेब मोहिं दरसन दीजे हो

साहेब मोहिं दरसन दीजे हो। करुना-निधि मेहर करीजे हो॥
पपीहा के चित स्वाँति बसै, भावै नहिं जल दूजा हो।
जैसे काग जहाज चढ़े, वा को और न सूझा हो॥
बार बार बिनती करूँ, मेरी अरज सुनीजे हो।
भवसागर से काढ़ि के, अपना करि लीजे हो॥
सत्य लोक से सुरति करी, तब जग में आये हो।
जम से जीव छोड़ाइ के, धर्मनि मन भाये हो॥

धर्मदास जी सद्गुरु कबीर साहिब की विनती करते हुए कह रहे हैं, हे सद्गुरु! कृपा करके मुझे अपने दर्शन दो। जैसे पपीहे के मन में स्वाँति का जल ही बसता है, उसे और कोई जल अच्छा नहीं लगता, जैसे समुद्री जहाज़ में कौवे को जहाज़ के अलावा कोई भी ठिकाना नहीं मिलता है, (वो उड़कर जाता है, पर फिर वापिस उसी पर आ जाता है) इसी तरह मेरे भी आप ही सहारे हैं। हे साहिब! मेरी भी बार-बार यही विनती है कि मुझे संसार-सागर से निकाल कर अपना कर लो। आपने सत्यलोक से सुरति की और फिर इस संसार में जीवों के कल्याण के लिए आए हो और मेरे मन को बड़े अच्छे लगे हो।

जा ते हंस सत्य लोके जाई

मूल शब्द धुनि होत अँजोरा। सुरति बाँदि राखो इक ठौरा।।
सुरति डोरि चेतो चित लाई। मूल सब्द की यही उपाई।।
सूर चंद एक घर आवै। तबही डोरी ले बिलमावै।।
मूल सब्द धुनि होत उचारा। तहवाँ जाय करो पैसारा।।
अकह कँवल कै ऊपर मूला। सहस कँवल तहवाँ रहु फूला।।
परिमल अग्र बास तहँ आवै। हंसा पियत बहुत सुख पावै।।
होय दास सतगुरु के पासा। सेवा भगति प्रेम परगासा।।

मैं तो साहब तुम कहँ जाना। मेरो मन तुम सों मनमाना।।
भरम छुटै सो करौ उपाई। जा ते हंस सत्य लोके जाई।।
सुरति लगाई के करो सँभारा। कुल कै करम छोड़ ब्यौहारा।।
जो सत्य शब्दहि करै विचारा। सोई हंसा भव सिंधु उबारा।।
अकह बात कहा नहिं जाई। अगम गम्म तहँ सुरति लगाई।।

आत्मा स्वप्न रूप है

जाते भयो अण्ड स्वप्न रूप बसै अण्ड माहिं,
कर्त्ता को स्वरूप नाहीं, अण्ड को स्वरूप है।
नाद बिन्द योग स्वप्न, जीव ईश भोग स्वप्न,
भूमि आव तार निराकार स्वप्न रूप है॥
पाप पुण्य करै स्वप्न वेद और वेदान्त स्वप्न,
वाचा और अवाचा स्वप्न रूप सो अनूप है।
चंद्र सूर्य भास स्वप्न पंच में प्रपंच स्वप्न,
स्वर्ग नर्क बीच बसै सोऊ स्वप्न रूप है॥
ओहं और सोहं स्वप्न पिण्ड और ब्रह्माण्ड स्वप्न,
आत्मा परमात्मा स्वप्न रूप सो अरूप है।
जरा मृत्यु काल स्वप्न गुरु शिष्य बोध स्वप्न,
अक्षर निःअक्षर आत्मा स्वप्न रूप है॥
कहत कबीर सुन गोरख वचन मम,
स्वप्न ते परे सत्य सत्य रूप भूप है।
सोई सत्यनाम सत्यलोक बीच वासा करे,
नहीं कहूँ आवे नहीं जावे सत्यरूप है॥

साहिब कह रहे हैं कि जिसने इस तीन-लोक रूपी अण्डे की रचना की, वो इसी अण्डे के बीच वास करता है। उसका कोई रूपी नहीं है, पर अण्डे का स्वरूप है। वो कह रहे हैं कि शब्द भी स्वप्न है, शून्य

भी स्वप्न है, योग भी स्वप्न समान हैं; जीव भी स्वप्न है, ईश भी स्वप्न है, संसार के सब भोग भी स्वप्न हैं; भूमि पर अवतार धारण करने वाले भी स्वप्न हैं, **निराकार भी स्वप्न रूप है;** पाप और पुण्य भी स्वप्न है, वेद और वेदांत भी स्वप्न हैं; बोलना और मौन रहना—दोनों स्वप्न हैं, सुन्दरता भी स्वप्न है; चाँद और सूर्य का भास भी स्वप्न है, पाँच तत्व और उनकी पाँच-पाँच प्रकृतियाँ भी स्वप्न हैं, स्वर्ग और नरक में रहने वाला भी स्वप्न रूप है; ओहं और सोहं भी स्वप्न हैं, पिण्ड और ब्रह्माण्ड भी स्वप्न हैं; आत्मा -परमात्मा भी स्वप्न रूप हैं, जिनका कोई आकार नहीं है। बुढ़ापा, मृत्यु, काल आदि भी स्वप्न हैं और गुरु, शिष्य का बोध भी स्वप्न है; अक्षर, निअक्षर भी स्वप्न हैं, आत्मा भी स्वप्न रूप है। **साहिब गोरखनाथ से कह रहे हैं कि मेरा बचन सुनो, स्वप्न से परे एक सत्य है, वही सत्य नाम है, जो सत्य लोक में वास करता है, वो कहीं आता-जाता नहीं और वही सत्यरूप है।**

आत्मा स्वप्न रूप कैसे है ? जब शुद्ध चेतन सत्ता प्राणों को धारण करती है, तो उसे जीव कहा जाता है, जब प्राणों से निकल जाती है, तो आत्मा कहते हैं, लेकिन ऐसे में भी मन होता है, इसलिए शुद्ध चेतन सत्ता नहीं है अभी भी, इसलिए स्वप्न रूप कहा। शुद्ध रूप में चेतन सत्ता तब आती है, जब तीन लोक से परे चौथे लोक में पहुँचती है। तब इसे हंसा कहा जाता है। इसी तरह परमात्मा मन का नाम है। शुद्ध चेतन सत्ता जिसकी अंश है, उसे संतों ने 'साहिब' कहा है। वास्तव में उसका कोई नाम नहीं है, लेकिन संतों ने उसे प्यार से साहिब कहकर पुकारा है। बाकी **परमात्मा, ईश्वर आदि निरंजन के नाम हैं।**

साधो भाई उहवाँ के हम बासी

साधो भाई उहवाँ के हम बासी, जहवाँ पहुँचै नहिं अबिनासी।।
जहवाँ जोगी जोग न पावै, सुरति सबद नहिं कोई।
जहवाँ करता करे न पावै, हम हीं करैं सो होई।।

ब्रह्मा बिस्नु नाहिं गम सिव की, नहीं तहाँ अविनासी।
आदि जोति उहाँ अमल न पावै, हमहीं भोग बिलासी।।
त्रिकुटी सुन्न नाहिं है उहवाँ, दंडमेरु ना गिरिवर।
सुखमन अजपा एकौ नाहीं, बंकनाल ना सरवर।।
जहवाँ पाँच तत्त ना स्वाँसा, जगमग झिलमिल नाहीं।
पलटूदास की औघट घाटी, बिरला गुरुमुख जाहीं।।

पलटू साहिब कह रहे हैं कि हम उस लोक के निवासी हैं, जहाँ अविनाशी ब्रह्म भी नहीं पहुँच सकता है। वहाँ योगी का योग नहीं पहुँचता है। वहाँ सुरति शब्द अभ्यासी भी नहीं पहुँचता है। वहाँ कर्त्ता कुछ नहीं कर सकता है, जो सद्गुरु चाहे, वही होता है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि की पहुँच नहीं है। वहाँ अविनाशी परमात्मा भी नहीं है। आदि ज्योति माया का मायाजाल भी नहीं है। त्रिकुटी, शून्य, सुषुम्ना, अजपा जाप, बंकनाल आदि भी नहीं है। वहाँ पाँच तत्व, स्वाँसा भी नहीं है। उस अमर लोक की घाटी बड़ी ही विकट है, वहाँ कोई बिरला गुरुमुख ही जाता है।

अमर लोक कस पइये हो

सुरति निरति दोउ मतो करत हैं, चलो सतगुरु पै जइये हो।।
सतगुरु चीन्हि चरन चित लैये, दृष्टि से दृष्टि मिलइये हो।
सतगुरु साह साध सौदागर, भक्ति पटो लिखवइये हो।।
मन मानिक की खुली किंवरियाँ, चढ़ गइ झमकि अटरिया हो।
नहिं वहँ डोरि नहीं वहँ रसरी, अमर लोक कस पइये हो।।
है वहँ डोरि सुरति कर सोझो, गुरु के सब्द चढ़ि जइये हो।
घर है मनो मेरे बगर रमानो, फूल रही फुल बगिया हो।।
अछै कमल पर बहै सुरसरी, तहँ बैठ हंस नहइये हो।
धरमदास की अरज गुसाईं, आवागमन मिटइये हो।।

बीचे अमरपुर धाम

पिया बिना मोहिं नीक न लागै गाँव।।
चलत चलत मोरे चरन दुखित भे, आँखिन परिगै धूर।।
आगे चलूँ पंथ नहिं सूझै, पाछे परै न पाँव।।
ससु रे जाउँ पिया नहिं चीन्है, नैहर जाव लजाऊँ।।
इहाँ मोर गाँव उहाँ मोर पाही, बीचे अमरपुर धाम।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, तहाँ गाँव ना ठाँव।।

बसै सत्य लोक में जाइ

सत्त सुकृत सत्य नाम, सुमिरु नर प्रानी हो।
सुमति से रचहु बियाह, कुमति घर छाड़ी हो।।
सत्त सुकृत माँड़ो, तो रुचि रुचि छावो हो।
सतगुरु बिप्र बुलाय कै, कलस धरावो हो।।
पहिली भँवरिया वेद, पढ़ै मुनि ज्ञानी हो।
दूसरी भँवरिया तिरथ, जा को निरमल पानी हो।।
तिसरी भँवरिया भक्ति, दुबिधा जिनि लावो हो।
चौथी भँवरिया प्रेम, प्रतीति बढ़ावो हो।।
पंचई भँवरिया अलख, संग सुमति सयानी हो।
छठई भँवरिया छिमा, जहँ अमी नहानी हो।।
सतईं भँवरिया साहिब मिले, मिटि आवा जाना हो।
प्रेम मगन भइ भाँवर, उठत धुन तानी हो।।
सतगुरु गाँठि प्रेम की, छोड़ि ना छूटै हो।
लागि रहो गुरु ज्ञान, डोरि ना टूटै हो।।
दास कबीर कै मंगल, जो कोई गावै हो।
बसै सत्य लोक में जाइ, अमर पद पावै हो।।

पहुँचे कोई हंसा हो

साहेब पतिया पठाये, सो हंसा बाँचे हो।।
पाती बाँचि घर जावो, पुरुष के पासे हो।।
ज्ञान रंग पालान, सुरति की काठी हो।।
सार सब्द सवार, अनंत कला सोभा हो।।
कामिनी करहि सिंगार, हंसा सुनु बानी हो।।
आवो पलँग चढ़ि बैठो, तो दरसन देहु हो।।
हंसा सब्द विदेह, रूप नहिं रेखा हो।।
कामिनी रहत लजाय, सोभा निजु देखा हो।।
धर्मराय उठि बोले, हंसा सुनि लेहु हो।।
कहँ को कियो है पयान, सो कहो समुझाइ हो।।
तब हंसा अस बोले, सुनो धर्मराय हो।।
पाये पुरुष के पान, तो लोक के जाइब हो।।
तब धर्मराय पुनि बोले, हंसा सुनि लेहु हो।।
जाहु पुरुष के पास, सीस पगु देहु हो।।
मानसरोवर ताल, जहाँ अमी सागर हो।।
हंसा करै बिसराम, तो अग्र उजागर हो।।
अमर लोक एक दीप, तो सोभा सुहेल हो।।
तहँ हंसन के बास, सुरति मिलि खेलै हो।।
अमर लोक निज धाम, हंसन कै देसा हो।।
कहैं कबीर पुकारि, सुनो धर्मदासा हो।।
वह तो अगम अगाध, पहुँचे कोई हंसा हो।।

अवधू बेगम देस हमारा

अवधू वेगम देस हमारा।।
राजा रंक फकीर बादसाह, सब से कहीं पुकारा।

जो तुम चाहत अहौ परम पद, बसिहो देस हमारा।।
जो तुम आये झीने होइ के, तजो मनी की भारा।
ऐसी रहनि रहो रे गोरख, सहज उतरि जाव पारा।।
सत्यनाम की हैं महतावैं, साहेब के दरबारा।।
बचना चाहो कठिन काल से, गहो शब्द टकसारा।
कहैं कबीर सुनो हो गोरख, सत्यनाम है सारा।।

चलहु सखी वहि देस

चलहु सखी वहि देस, जहवाँ दिवस न रजनी।।
पाप पुन्न नहिं चाँद सूरज नहिं, नहीं सजन नहिं सजनी।।
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सुत् नहिं जननी।।
लोक वेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी।।
पलटूदास गुरु नहिं चेला, एक नाम रम रमनी।।

अजर लोक में कर निवास

कोइ खेलै खोज बसंत चीन्ह। पद जद पावै होय अधीन।।
तजि माया बंधन बिकार। तब सतगुरु से पावै सार।।
ज्यों जल बिन रहै तड़प मीन। आठ पहर रहै बिरह लीन।।
सो सखि सूरति पावै खोज। पुरुष पलँग पर मारै मौज।।
सो अस भाखै भेद चीन्ह। तन मन दरपन माँज कीन्ह।।
मूर मता सतगुरु लखाय। सो सुरति नित आवै जाय।।
जब मतंग मन होत दीन। पिय रस प्याला अमर पीन।।
अजर लोक में कर निवास। मुक्ति जुक्ति जोनी निरास।।
सूख इंद्री गुन त्याग तीन। तुलसी लखा जब अज अमीन।।

अमर लोक पहुँचावो

साहिब मेरी ओर निहारो।
परजा पुत्र अहौं मैं साहेब, बहुत बात मैं टारो।।
हौं मैं कोटि जनम को पापी, मन बच करम असारो।
एकौ कर्म छुटे ना कबहूँ, बहु विधि बात बिगारो।।
हौं अपराधी बहुत जुगन की, नइया मोर उबारो।
बंदीछोर सकल सुख-दाता, करुणामय करत पुकारो।।
सीस चढ़ाइ पाप की मोटरी, आयो तुम्हरे द्वारो।
को अस हमरे भार उतारै, तुमहीं हेतु हमारो।।
धरमदास यह विनती बिनवै, सतगुरु मो को तारो।
साहिब कबीर हंस के राजा, अमर लोक पहुँचावो।।

अमर लोक में अमृत पीवे

पावै प्रेम पद जग उँजियारा। सुरति बाँध करै अनुसारा।।
निजपुर पहुँचै बिलम न होई। जो मन चीन्ह के पावै कोई।।
पाँच पचीस अपने बस होई। क्रोध मोह तृस्ना सब खोई।।
ऐसन जोगि जोग पसारा। ता के घट सदा उँजियारा।।
होखै योग न मन बसि आवै। जनम जनम ऐसे जहँडावै।।
भगति ज्ञान का करौ विचारा। सहज मुक्ति भवसिंधु उबारा।।
मन कै धारा चिन्हौ चित लाई। कसी कमान ज्ञान पर आई।।
तीनि लोक भौ वेद पसारा। ता मैं चीन्हो ज्ञान विचारा।।
ता मैं सतगुरु सब ते न्यारा। चौथे लोक ताको पैसारा।।
निहचय अजर अमर होइ जाई। कबहिं न या जग भटका खाई।।
अमर लोक में अमृत पीवै। मुक्ति महातम युग युग जीवै।।
अंतर योग भवन में बासा। परम पुरुष जहँ भय कै नासा।।

जुग जुग रहै पुरुष के पासा। अविगति देखै अजब तमासा।।
सतगुरु सब्द मानु सत्य सोई। जनम जनम कै दुरमति होई।।

वेदों में बहुत ज्ञान है, पर वहाँ तीन लोक तक का ज्ञान है। सद्गुरु का ज्ञान ऊँचा है। वो सबसे न्यारा है, क्योंकि वो चौथे लोक में निवास करने वाला है, वहाँ का ज्ञान देता है। उस लोक में जाकर जीव अमर हो जाता है, फिर भवसागर में लौटकर नहीं आता, निर्भय होकर उस परम पुरुष के पास ही रहकर उस अमृत का पान करता है, जो वो स्वयं ही है।

मैं अपना घर जानी

मीरा मन मानी, सुरति सैल असमानी।
जब जब सुरति लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी।।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।।
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावे अन्न न पानी।।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी।।
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी, देस बिदेस पिछानी।।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी।।
खोजन फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।।
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु, दीन्ही सुरति सहदानी।।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी।।
मीरा खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी।।

मीराबाई कह रही है कि उस सच्चे घर का भेद जानने के लिए बहुत भटकी, उस अमर लोक का भेद बताने वाला कोई नहीं मिला। फिर मुझे सद्गुरु रविदास जी मिले, जिन्होंने मेरी सुरति को सार नाम का दान दिया और तब मैं अपने प्रियतम से मिल सकी, तब मैंने अपना सही घर जान लिया।

अजर अमर घर लै चलूँ

का भरमत भटकत फिरो, करो खोज बनाओई।
मूल सब्द चीन्हे बिना, जिव जम लै जाई।।
पान परवाना पाइ कै, निज लगन धरावो।
जम की कला मिटाइ कै, लेव अंग चढ़ाई।।
मूल सब्द हम कहि दिया, जुग जुग समुझाई।
जो निस्चै करि मानि है, तेहिं लेंव बचाई।।
कह कबीर धर्मदास से, हम लीन्ह चिताई।
अजर अमर घर लै चलूँ, जहँ काल न जाई।।

एक ही एक है

सातहू सर्ग अपबर्ग के पार में, जहाँ मैं रहौं ना पवन पानी।
चाँद ना सूर ना राति ना दिवस है, उहाँ कै मर्म ना बेद जानी।।
ज्ञान ना ध्यान ना ब्रह्मा न बिस्नु है, पहुँच ना सकै कोउ ब्रह्मज्ञानी।
दास पलटू कहै एक ही एक है, दूसरा नहीं कोउ राव रानी।।

स्वर्गादि लोकों के परे एक देश है, जहाँ पवन, पानी, चाँद, सूर्य, रात, दिन आदि कुछ भी नहीं है। वहाँ का रहस्य वेद भी नहीं जानते हैं। त्रिदेव आदि भी वहाँ नहीं हैं। ब्रह्मज्ञानी भी वहाँ नहीं पहुँच सकता है। वहाँ केवल एक परम पुरुष ही है, दूसरा कोई राजा-रानी नहीं है।

सखिया वा घर सबसे न्यारा

सखिया वा घर सबसे न्यारा, जहाँ पूरन पुरुष हमारा।।
जहँ नहिं सुख दुख साँच झूठ नहिं, पाप न पुण्य पसारा।
नहिं दिन रैन चंद नहिं सूरज, बिना जोति उजियारा।।
नहिं तहँ ज्ञान ध्यान नहिं जप तप, वेद कितेब न बानी।

करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब जहाँ हिरानी।।
धर नहिं अधर न बाहर भीतर, पिंड ब्रह्माण्ड कछु नाहीं।
पाँच तत्व गुन तीन नहीं तहँ, साखी शब्द न ताहीं।।
मूल न फूल बेलि नहिं बीजा, बिना बृच्छ फल सोहै।
ओहं सोहं अर्ध उर्ध नहिं, स्वासा लेख न कोहै।।
नहिं निगुर्ण नहिं सर्गुन भाई, नहीं सूक्ष्म स्थूलं।
नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के मूलं।।
जहाँ पुरुष तहवाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावै पद निरवाना।।

वो अमर लोक सबसे न्यारा है, जहाँ हम हंसों का परम पुरुष रहता है। वहाँ सुख, दुख आदि नहीं हैं। सच और झूठ भी नहीं हैं और पाप-पुण्य का खेल भी नहीं है। वहाँ रात, दिन, सूर्य, चादँ आदि नहीं है। वहाँ तो बिना ज्योति के प्रकाश है। ज्ञान, ध्यान, जप, तप, वेद, कितेब आदि भी वहाँ नहीं है। धरती, आकाश, पिंड, ब्रह्माण्ड आदि भी नहीं हैं। पाँच तत्व, तीन गुण, साखी, शब्द आदि भई नहीं है। सगुण भी नहीं हैं, निर्गुण भी नहीं है। ओहं, सोहं भी नहीं हैं। स्वाँसा का लेखा भी नहीं है। यह सब तो नश्वर संसार के अन्दर है। जहाँ सतपुरुष रहता है, वहाँ और कुछ भी नहीं है। साहिब कह रहे हैं कि जो हमारी बात को समझ लेगा, वो निश्चय ही निर्वाण पद को प्राप्त कर लेगा।

पुरुष जहँ रहहि हो

चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो।
अगम महल चढ़ि चलो, जहाँ पिय से मिलो।।
मिलि चलो आपन देस, जहाँ छबि छाजई।
सेत सब्द जहँ खिले, हंस होइ आवही।।
अग्र वस्तु मिलि जाय, सब्द टकसार हो।

चहुँ दिस लागी झलरिया, तो लोक असंख हो।।
अंबु दीप एक देस, पुरुष जहँ रहहि हो।
कहैं कबीर धर्मदास, बिछुरन नहिं होइ हो।।

धर्मनि वा देस हमारो बासा

धर्मनि वा देस हमारो बासा। जहँ हंसा करै बिलासा॥
सात सुन्न के ऊपर साहेब, सेतै सेत निवासा।
सदा आनन्द रहै वा देसा, कबहुँ न लगै उदासा॥
सूरज चंद दिवस नहिं रजनी, नाहीं धरनि अकासा।
ऐसा अमर लोक है अवधू, केवला फरै बारामासा॥
ब्रह्मा विष्णु महेसुर कहिये, थके जोति के पासा।
चौथा लोक बसै जम पारा, यह सब काल तमासा॥
उहाँ के गये बहुरि ना अइहौ, आवागमन भय नासा।
ब्रह्म अखंडित साहेब कहिये, आपु में आपु प्रगासा॥
कहैं कबीर सुनो हो धर्मनि, छाँड़ो खल कै आसा।
अमृत भोजन हंसा पावै, बैठि पुरुष के पासा॥

साहिब धर्मदास को अमर देश की बात बताते हुए कह रहे हैं, हे धर्मदास! मैं उस देश में रहता हूँ, जहाँ हंस हर समय आनन्द में मग्न रहता है। वो स्थान सात शून्य के भी आगे है, जो श्वेत ही श्वेत है। वहाँ हर समय आनन्द ही आनन्द है, कभी उदासी नहीं है। चाँद, सूर्य, दिन, रात, धरती और आकाश कुछ भी वहाँ नहीं है। वो एक अमर लोक है। त्रिदेव भी ज्योति के पास पहुँचकर थक जाते हैं, उनकी पहुँच वहीं तक है, पर चौथा लोक काल से परे है, बाकी तीन लोक में काल का ही खेल है। जो वहाँ पहुँच जाता है, फिर वापिस काल की दुनिया में नहीं आता। उसका आवागमण का भय समाप्त हो जाता है। उसे 'साहिब' कहा जाता है और वो स्वयं प्रकाशित है। साहिब धर्मदास से कहते हैं कि तुम दुष्ट

काल की आशा छोड़ दो और उस लोक में चलो, जहाँ परम-पुरुष के पास बैठकर हंसा अमृत भोजन करता है।

वा घर की सुधि कोई न बतावै

वा घर की सुधि कोई न बतावै, जा घर से जिव आया हो।।
धरती अकास पवन नहिं पानी, नहिं तब आदि माया हो।।
ब्रह्मा विस्नु महेस नहीं तब, जीव कहाँ से आया हो।।
पानी पवन कै दहिया जमायो, अगिन कै जामन दीन्हा हो।।
चाँद सूरज दोउ बने अहीरा, मथि दहिया घिउ काढ़ा हो।।
ये मनसा माया के लोभी, बार बार पछिताया हो।।
लख नहिं परै नाम साहेब का, फिर फिर भटका खाया हो।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, वह घर बिरले पाया हो।।

जहाँ से आत्मा आई है, उस अमर लोक की बात कोई नहीं बताता है। तब धरती, आकाश, चाँद, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि कुछ भी नहीं था। उस अमर लोक को कोई बिरला ही पाता है जबकि अन्य काल के जीव साहिब का सच्चा नाम पहचान नहीं पाने से बार-बार संसार में ही भटकते रहते हैं।

अकथ अलोक लोक से न्यारा

अघर घर सतगुरु सोध करो, लखि सुृति धरनि धरो।।
काया खोज करो कँवलन में, सो गुरु तत्त तरो।।
गुरु चारों पद चारि ठिकाने, भिन भिन बरन बरो।।
परथम गुरु दलसहसकँवल में, कंज काल सुधरो।।
गुरु दूसर गढ़ गगन सिखर पर, द्वैदल पद सुमिरौ।।
गुरु तीसर तीसर कँवला में, चौदल चरन परौ।।

चौथे सिंघ सतलोक गुरु को, जानै सो जोई उबरो।।
गुरु चारि पद पार परम गुरु, सो संतन पकरो।।
सुन्न शब्द नहिं आतम आसा, स्वास जोग झगरो।।
अंड ब्रह्माण्ड से पिंड पसारा। निरगुन गुन बिगरो।।
गुरु सिष नाहिं गुरु गुरुवाई, बिन गुरु भरम मरो।।
आसा बस बंधन सिष कीन्हा, इन हिये ज्ञान हरो।।
पढ़ि पढ़ि मोट भये मन ज्ञानी, मान मस्त मगरो।।
सुनि सतसंग नेक नहिं भावै, बूड़ जनम अगरो।।
मूल अजर सतगुरु बिन भूले, नहिं पावै डगरो।।
ये सब्दन में परखि पुकारे, या से भव उतरो।।
अकथ अलोक लोक से न्यारा, तुलसी अज अजरो।।

कहैं कबीर सो हंस पहुँचे

सत्त सुकृत सत्य नाम को, आदि मनाइये।
सुर्त जोग-संतायन, निसि दिन ध्याइये।।
सतगुरु चरन मनाय, परम पद पाइये।
करि दंडवत प्रनाम, तो मंगल गाइये।।
गावै जो मंगल कामिनी, जहँ सत्त सीतल थान है।
परम पावन ठाम अविचल, जहँ ससि सुरज की खान है।।
मानिकपुर इक गाँव अविचल, जहँ न रैन बिहानि है।
कहैं कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्त नामहि जानि है।।
अष्ट खंड जहँ कामिनी, आरति साजहीं।
चार भानु की सोभा, अगं बिराजहीं।।
दृष्टि भाव जहँ होत, हंस सुख पावहीं।
हंसन हंस बिलास, कामिनी सचि मानहीं।।
सचि मानि कामिनी सुख, हंसा आगे को पग धारहीं।

सुख सागर सुख बास में, जहँ सुकृत दरस निहारहीं।।
पतित पावन भये हंसा, काया सोरह भान है।
कहैं कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्य नामहि जानि है।।
सुख सागर की सोभा, कहा बिसेखिये।
कोटिन रवि चहुँ ओर, उदय तहँ पेखिये।।
धरनि अकास जहाँ नहिं, हीरा जगमगै।
उहवाँ दीनदयाल, हंस के संग लगै।।
संग लगि उहवाँ हंस के, कहै तुम हमें भल चीन्ह हो।
अंबु करि सो दीप दिखावों, प्रथम पुर्ष जो कीन्ह हो।।
असंख रवि औ कोटि दामिनी, पुहुप सेज अरधान है।
कहैं कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्य नामहि जानि है।।
आदि अंत जोगजीत, हंस के सँग लगे।
पंकज करिय अँजोर, होत साहिब मिले।।
दोउ कर जोरि मनाय, बहुत बिनती करी।
साहिब दरसन देव, हंस सरधा धरी।।
दया कीन्हा पुर्ष बिहँसे, मस्तक दरस दिखाई हो।
अमृत फल जब चार दीन्हा, सकल हंस मिलि पाई हो।।
अटल काया जब भई, मंजिल करी अस्थान है।
कहैं कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्य नामहि जानि है।।
सदा बसंत जहँ फूलो, कुंज सुहावहीं।
अछै बृच्छ तर हंसा, सेज बिछावहीं।।
चहुँ दिसि हंस की पाँती, हीरा जगमगै।
सोरह रवि को रूप, अंग में चमकहीं।।
अगं हंसा चमक सोभा, सूर सोरह पावहीं।
धन सतगुरु को सार बीरा, पुर्ष दरस दिखावहीं।।
हंस सुजन जन अंस भेंटे, हंस को पहिचानि है।

कहैं कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्य नामहि जानि है।।

हे हंसो, सद्‌गुरु से सार नम पाकर उन्हीं के चरणों का ध्यान करो, तभी उस अमर लोक को पा सकते हो। सद्‌गुरु वहाँ ले जाकर सत्पुरुष का दर्शन करवाते हैं, जिससे हंस में 16 सूर्यों के समान प्रकाश आ जाता है।

पंथ अगम घर में समाय

सतगुरु संत बसंत बास। जहँ पोहमी पवन नहिं जल अकास।।
छाँह धूप नहिं चंद सूर। कंज कँवल पद पार मूल।।
मान सरोवर दीप चास। जहँ होत जोत जगमग प्रकास।।
कोटि भान भल भू धाम। अलो अलोक लख से निदान।।
ब्रह्मा बिस्नु महेस नास। जोगी जती नहिं जग निवास।।
साध आदि कोई संत जाय। पंथ अगम घर में समाय।।
यह कोई बूझे परम दास। भाव भगति जग से उदास।।
सतसंग कर लखि पावे सोय। काल करम सब डारे धोय।।
धरम धार सूरत बिलासे। सो पद गावे तुलसीदास।।

सद्‌गुरु का वास वहाँ है, जहाँ पवन, पानी, धरती, आकाश आदि नहीं हैं; जहाँ धूप, छाँव, चाँद, सूर्य आदि भी नहीं हैं; जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, योगी, यती आदि भी नहीं हैं। उस अमर घर में केवल संत जाते हैं।

अमर लोक में डेरा परिगै

साहेब मोरी बहियाँ सम्हारि गही।।
गहरी नदिया नाव झाँझरी, बोझा अधिक भई।
मोह लोभ की लहर उठत है, नदिया झकोर बही।।
तुमहिं बिगारो तुमहिं सँवारो, तुमहिं भंडार भरी।

जब चाहो तब पार लगावो, नहिं तो जात बही।।
कुमति काटि के सुमति बढ़ावो, बल बुधि ज्ञान दई।
मैं पापी बहु बेरी चूकँ, तुम मेरी चूक सही।।
धरमदास सरन सतगुरु के, अब धुनि लाग रही।
अमर लोक में डेरा परिगै, समरथ नाम सही।।

पलटूदास तहाँ चलि गया

पलटू कहै साच कै मानौ, और बात झूठ कै जानौ।।
जहवाँ धरती नाहिं अकासा, चाँद सूरज नाहीं परगासा।।
जहवाँ पवन जाय ना पानी, वेद कितेब मरम न जानी।।
जहवाँ ब्रह्म बिस्नु न जानीं, दस औतार न तहाँ समाहीं।।
आदि जोति ना बसै निरंजन, जहवाँ सुन्न सबद नहिं गंजन।।
निराकार ना उहाँ अकारा, सत्य सब्द नाहीं बिस्तारा।।
जहवाँ जोगी योग न पावै, महादेव ना तारी लावै।।
उहवाँ हद अनहद ना जावै, बेहद वह रहनी ना पावै।।
जहवाँ नाहिं अगिन परगासा, पाँच तत्तु ना चलता स्वाँसा।।
ब्रह्म ज्ञान ना पहुँचै उहवाँ, अनुभौ पद ना बोलै तहवाँ।।
सात सर्ग अपबर्ग न कोई, पिंड उहाँ ब्रह्माण्ड न होई।।
जहवाँ करता करै न पावै, सिद्धि समाधि ध्यान ना लावै।।
अजपा गिरा लंबिका नाहीं, जगमग झिलिमिलि उहाँ न जाहीं।।
सोहं सोहं उहाँ न बोलै, चले न युक्ति सुरत ना डोलै।।
उहवाँ नाहिं रहै अबिनासी, पूरन ब्रह्म सकै न जासी।।
निरभौ नाद नहीं ओंकारा, निरगुन रूप नहीं बिस्तारा।।
पलटूदास तहाँ चलि गया, आगे ह्वै पाछे ना भया।।
पलटू देखि हाथ को मलै, आगे कहै तो परदा खुलै।।

अजर लोक सत्यपुरुष धाम

सुरति निरति नित नैन जाग। अनल पच्छ उड़ि उलाटे भाग।।
ऋतु बसंत जहँ बिमल ठौर। कंथ पंथ पर अंत और।।
हंस भवन अज अमर लाग। संग सखी सज सुरति पाग।।
जहँ काल करम करता नसाय। रज सत तम जम जहँ न जाय।।
निरगुन सरगुन टूटि तारा। नहिं पाँच तत्त तन पौन आग।।
अजर लोक सत्यपुरुष धाम। सोइ संत सुझावत सत्य नाम।
तुलसी तत मत मरम त्याग। जहँ पिंड ब्रह्माण्ड न अगम थाग।।

कोई समझें सूरे संत

कोई समझें सूरे संत, मता बेअंत है॥
जोगी जती तपी सन्यासी, नहिं कई पावे अंत।
आगे अगम बिना सतगुरु के, को लखवावे पंथ॥
मारग मरम मूल हंसन को, वे वोही देस बसंत।
बिन उनकी संगत नहिं पावे, पचि पचि मुए रे अनंत॥
जो वोहि लोक लखन की बरनन, कहते बाक वृतंत।
पिय पद परखि हरखि हिये अपने, उमँगि मिले जेहि कंत॥
ध्रुव तारे सूरज मंडल चढ़ि, आगे को परंत।
उनके परे परम गुर पूरन, जहँ पहुँचै कोई संत॥
अधर धाम स्वामी को सेवे, तुलसी अगम अनंत।
सेज बिछाय पलँग पर पौढ़ै, सो तोड़े जम दंत॥

तुलसी साहिब कह रहे हैं कि सत्य का मार्ग बेअंत है, कोई संत-सूरा ही जा सकता है। योगी, जती, तपी, सन्यासी आदि कोई भी उसे नहीं पाया। सद्गुरु आगे-आगे नहीं होगा तो राह कौन दिखायेगा! वो उसी देश में रहते हैं, इसलिए उन्हें ही इस राह का भेद मालूम है। उनकी संगत के बिना कोई उसे नहीं पा सकता है, कितने ही ऐसे ही बेकार में

पच मुए। ध्रुव तारे और सूर्य मण्डल को भेद कर उसके आगे पूरण गुरु का स्थान है, जहाँ केवल संत ही पहुँच पाते हैं।

चल हंसा सतलोक हमारे

चल हंसा सतलोक हमारे, छाड़ो यह संसारा हो।
यह संसार काल जम फंदा, कर्म का जाल पसारा हो।।
चौदह लोक बसत वा के मुख में, सबको करत अहारा हो।
जारि भूँजि कोइला करि डारै, फिरि फिरि दै औतारा हो।।
ब्रह्मा बिस्नु सिव देंह धरि आये, इन कै कौन बिचारा हो।
सुर नर मुनि सब छल बल मारे, लै चौरासी डारा हो।।
मद्ध अकास आपु जहँ बैठे, सेत सरूप अकारा हो।
उन के रूप कहाँ लगि बरनौं, संख भान उँजियारा हो।।
नौ मुकाम दसएँ अस्थाना, जहाँ बसै पुरुष पुराना हो।
कोटि चाँद सूरज छिपि जैहै, एक रोम परगासा हो।।
सेत सरूप शब्द जहँ फूले, हंसा करत बिहारा हो।
जो जो सरनि गहे सतगुरु के, उन कै होत उबारा हो।।
वोहि देसवा एख अजर बस्तु है, बरसत अमृत धारा हो।
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो।।

हंसा लोक हमारे अइहौ

हंसा लोक हमारे अइहौ, तातें अमृत फल तुम पइहौ।।
लोक हमारा अगम दूर है, पार न पावै कोई।
अति आधीन होय जो कोई, ता को देउ लखाई।।
मिरत लोक से हंसा आये, पुहुप दीप चलि जाई।
अंबु दीप में सुमिरन करिहौ, तब वह लोक दिखाई।।
माटी का पिंड छूटि जायाग, औं यह सकल विकारा।

ज्यों जल माहिं रहत है पुरइन, ऐसे हंस हमारा।।
लोक हमारे अइहो हंसा, तब सुख पइहौ भाई।
सुख सागर असनान करोगे, अजर अमर होइ जाई।।
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, हंसन करो बधाई।
सेत सिंघासन बैठक देहौं, जुग जुग राज कराई।।

चलो जहँ देस है तोरी

घड़ा एक नीर का फूटा। पत्र एक डार से टूटा॥
ऐसहि नर जात जिंदगानी। अजहु नहिं चेत अभिमानी॥
भुलो जनि देख तन गोरा। जगत में जीवना थोरा॥
निकरि जब प्रान जावैगा। कोई नहिं काम आवैगा॥
सजन परिवार सुत दारा। सभै एक रोज होइ न्यारा॥
तजो मद लोभ चतुराई। रहो निरसंक जग माहीं॥
सदा ना जान ये देही। लगावो नाम से नेही॥
कहै धर्मदास कर जोरी। चलो जहँ देस है तोरी॥

कह रहे हैं कि जैसे पानी का घड़ा फूट जाता है, डाली से पत्ता टूटकर गिर जाता है, ऐसे ही यह जीवन भी चला जायेगा। इसलिए किसी भी बात का घमण्ड नहीं करो। जब प्राण इस शरीर से निकल जायेंगे तो कोई काम नहीं आयेगा; स्त्री, बेटा, परिवार आदि सबसे जुदा होना पड़ेगा। इसलिए इन सबका मोह छोड़ो; सच्चे नाम से प्रीत करो और उस देश (अमर लोक) में चलो, जो तुम्हारा अपना है।

उहवाँ के हम बासी

साधो भाई उहवाँ के हम बासी, जहवाँ पहुँचै नहिं अबिनासी॥
जहवाँ जोगी जोग न पावै, सुरति सबद नहिं कोई।
जहवाँ करता करे न पावै, हम हीं करैं सो होई॥

ब्रह्मा बिस्नु नाहिं गमि सिव की, नहीं तहाँ अबिनासी।
आदि जोति उहाँ अमल न पावै, हमहीं भोग बिलासी॥
त्रिकुटी सुन्न नाहिं है उहवाँ, दंडमेरु ना गिरिवर।
सुखमन अजपा एकौ नाहीं, बंकनाल ना सरवर॥
जहवाँ पाँच तत्त ना स्वासा, जगमग झिलिमिलि नाहिं।
पलटूदास की औघट घाटी, बिरला गुरुमुख जाहीं॥

पलटू साहिब कह रहे हैं कि हम तो वहाँ के निवासी हैं, जहाँ निराकार परमात्मा भी नहीं पहुँच सकता है। जहाँ जोगी योग नहीं करता है, जहाँ न सुरति है, न शब्द है। जहाँ कर्त्ता कुछ नहीं कर सकता है, हम (संत) जो करें, वही होता है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ज्योति स्वरूपी परमात्मा भी नहीं है। वहाँ का भोग हमहीं करते हैं। वहाँ त्रिकुटी, मेरुदण्ड, शून्य, आदि भी नहीं है। वहाँ सुषुम्ना नाड़ी, अजपा जाप, बंकनाल आदि भी नहीं हैं। यानी ध्यान के केंद्र बिंदू भी नहीं हैं, ध्यान की स्थिति नहीं है। वहाँ पाँच तत्व भी नहीं हैं और स्वाँसा भी नहीं है, जगमगाती हुई ज्योति भी नहीं है। पलटू साहिब कह रहे हैं कि वहाँ का रास्ता बड़ा ही कठिन है, वहाँ कोई बिरला गुरुमुख ही जा सकता है।

सुन सतगुरु की बानी

विज्ञानी सुन सतगुरु की बानी।।
जेहि प्रताप हम भये विरागी, त्यागि सकल कुलकानी।।
पहले बहुत दिनों तक भटके, सुनि-सुनि बात बिरानी।
अब कुछ उर में पुण्य भये थिर, आदि कथा सहदानी।।
कामना गई प्रगट भई समता, रमता से रूचि मानी।
लालच लोभ मोह ममता की, मिट गई ऐंचातानी।।
हृदय अमीरस भरत ताल जहँ, शब्द उठे असमानी।
गुरु की कृपा होय तब पावै, परमधाम निर्बानी।।

सरिता उमड़ि सिंधु को सौंपे, नहिं गम जात बखानी।
सूर्य चंद्र तारागण नहिं तहँ, रैन न दिवस निशानी।।
यह संसार भेद की बानी, बिरला जन कोई जानी।
करि पहचान फेरि नहिं आवै, चौरासी की खानी।।
चंचल मन निश्चल हो बैठा, सुरति निरति ठहरानी।
कहैं कबीर दया सतगुरु की, मिली अटल रजधानी।।

हे ज्ञानी! सद्‌गुरु की वाणी सुनो, जिनके प्रताप से हम सारी कुल-मर्यादा छोड़ वैरागी हो गये। पहले तो हम दूसरों की बातें सुन-सुनकर बहुत दिन तक भटकते रहे, पर बाद में हृदय में पुराने कर्मों की पहचान स्वरूप संस्कार पैदा हुए। अब तो सारी कामना मिट गयी और समता का राज्य हो गया, ध्यान-मग्न रहने में ही रुचि हो गयी। हृदय अमृत-रस से भर गया और अनहद शब्द उठने लगे। जब गुरु की कृपा हुई तो उस परमधाम अमर-लोक को पा लिया। जैसे नदी अपने को समुद्र में समर्पित कर देती है, ऐसे ही आत्मा परमात्मा को समर्पित हो गयी। यह स्थिति बतायी नहीं जा सकती। वहाँ अमर लोक में सूर्य, चाँद, तारे आदि नहीं हैं, दिन-रात का निशान भी नहीं है। उस संसार का रहस्य कोई बिरला ही जानता है। जो कई उसे पहचान लेता है, वो फिर चौरासी में नहीं आता। उसका चंचल मन स्थिर हो जाता है और सुरति परमात्मा में लीन होकर शांत हो जाती है। साहिब कहते हैं कि सद्‌गुरु की कृपा से अमर लोक रूपी कभी न मिटने वाली राजधानी मिल जाती है।

संत अगम आदि अंत लोक अधर है अनंत

संत अगम आदि अंत लोक अधर है अनंत।
समुँद सात पार पंथ कंत कँवल में दीदार है।।
तीन लोक सोक पार चौथा चार लोक सार।
आदि अधर के अधार साध संतहि अगार हैं।।
अगुन सगुन सुरत वेद नेति नेति कहत भेद।

भर्म मुनिन के उमेद खेद खानि में दीदार है।।
भव भव भगवान खान चारो युग युगन जान है।
तुलसी बिदित है प्रमान संत करैं तो निरुवार है।।

कहन सुनन से न्यारा है

तू सूरत नैन निहार, यह अंड के पारा है।
तू हिरदे सोच बिचार, यह देस हमारा है॥
पहिले ध्यान गुरु का धारो, सुरत निरत मन पवन चितारो।
सहेलना धुन में नाम उचारो, तब सतगुरु लहो दीदारा है॥
सतगुरु दरस होइ जब भाई, वे दें तुम को नाम चिताई।
सुरत शब्द दोऊ भेद बताई, तब देखे अंड के पारा है॥
सतगुरु कृपा दृष्टि पहिचाना, अंड सिखर बेहद मैदाना।
सहज दास तहँ रोपा थाना, जो अग्रदीप सरदारा है॥
सात सुन्न बेहद के माहीं, सात संख तिन की ऊँचाई।
तीनि सुन्न लौं काल कहाई, आगे सत्त पसारा है॥
प्रथम अभय सुन्न है भाई, कन्या निकल यहँ बाहर आई।
जोग संतायन पूछो वाही, ममदारा वह भरतारा है॥
दूजे सकल सुन्न करि गाई, माया सहित निरंजन राई।
अमर कोट कै नकल बनाई, जिन अँड मधि रच्यो पसारा है॥
तीजे है सहसुन्न सुखाली, महाकाल यहँ कन्या ग्रासी।
जोग संतायन आये अबिनासी, जिन गल नख छेद निकारा है॥
चौथे सुन्न अजोख कहाई, सुद्ध ब्रह्म पुर्ष ध्यान समाई।
आद्या यहँ बीजा ले आई, देखो सृष्टि पसारा है॥
पंचम सुन्न अलोल कहाई, तहँ अदली बंदीवान रहाई।
जिनका सतगुरु न्याव चुकाई, जहँ गादी अदली सारा है॥
षष्ठे सार सुन्न कहलाई, सार भँडार याही के माहीं।

नीजे रचना ताहि रचाई, जो सबहिन तें न्यारा है॥
सात सुन्न ऊपर सत्य की नगरी, बाट बिहंगम बाँकी डगरी।
सो पहुँचे चाले बिन पग री, ऐसा खेल अपारा है॥
पहिली चकरी समाध कहाई, जिन हंसन सतगुरु मति पाई।
बेद भर्म सब दियो उड़ाई, तिरगुन तजि भये न्यारा है॥
दूजी चकरी अगाध कहाई, जिन सतगुरु संग द्रोह कराई।
पीछे आनि गहे सरनाई, जो यहँ आन पधारा है॥
तीजी चकरी मुनिकर नामा, जिन मुनियन सतगुरु मति जाना।
सो मुनियन यहँ आइ रहाना, करम भरम तजि डारा है॥
चौथी चकरी धुनि है भाई, जिन हंसन धुनि ध्यान लगाई।
धुनि सँग पहुँचे हमरे पाहीं, यह धुनि सबद मँझारा है॥
पंचम चकरी रास जो भाखी, अलमीना है तहँ मधि झाँकी।
लीला कोट अनन्त वहाँ की, जहँ रास बिलास अपारा है॥
षष्टम चकरी बिलास कहाई, जिन सतगुरु सँग प्रीति निबाही।
छुटते देंह जगह जहँ पाई, फिर नहिं भव अवतारा है॥
सतवीं चकरी बिनोद कहानो, कोटिन बंस गुरन तहँ जानो।
कलि में बोध किया ज्यों मानो, अँधकार खोया उजियारा है॥
अठवीं चकरी अनुरोध बखाना, तहाँ जुलह दीताना है।
जा का नाम कबीर बखाना, सो सब संतन सिर धारा है॥
ऐसी ऐसी सहस करोड़ी, ऊपर तले रची ज्यों पौड़ी।
गादी अदली रही सिर मौरी, जहँ सतगुरु बन्दीछोरा है॥
अनुरोध के ऊपर भाई, पद निर्बान के नीचे ताही।
पाँच संख याही ऊँचाई, जहँ अद्भुत ठाठ पसारा है॥
सोहल सुत हित दीप रचाई, सब सतु रहैं तासु के माहीं।
गादी अदल कबीर जहाँ ही, जो सबहिन में सरदारा है॥
पद निरबान है अनन्द अपारा, नूतन सूरति लोक सुधारा।

सत्त पुरुष नूतन तन धारा, जो सतगुरु संतन सारा है॥
आगे सत्तलोक है भाई, संखन कोस तासु ऊँचाई।
हीरा पन्ना लाल जड़ाई, जहँ अद्भुत खेल अपारा है॥
बाग बगीचे खिली फुलवारी, अमृत नहरें हो रहिं जारी।
हंसा केल करत तहँ भारी, जहँ अनहद धुरै अपारा है॥
ता मधि अधर सिंहासन गाजै, पुरुष सबद तहँ अधिक बिराजै।
कोटिन सूर्य रोम इक लाजै, ऐसा पुरुष दीदारा है॥
हंस हंसनी आरत उतारैं, खोड़स भानु सुर पुनि चारैं।
पद बीना सत सबद उचारैं, जो बेधत हिये मँझारा है॥
ता पर अगम महल इक न्यारा, संखन कोटि तासु बिस्तारा।
बाग बावड़ी अमृत धारा, जहँ अधरी चलैं फुहारा है॥
मोती महल औ हीरन चौंरा, तेस बरन तहँ हंस चकोरा।
सहस सूर छबि हंसन जोरा, ऐसा रूप निहारा है॥
अधर सिंघासन जिंदा साईं, अर्बन सूर्य रोम सम नाहीं।
हंस हिरंबर चँवर ढुलाई, ऐसा अगम अपारा है॥
तहँ अधरी ऊपर अधर धराई, संखन संख तासु ऊँचाई।
झिल मिल हट सो लोक कहाई, जहँ झिलमिल झिलमिल सारा है॥
बाग बगीचे झिलमिल कारी, रतनन बड़े पात औ डारी।
मोती महल औ रतन अटारी, तहँ पुरुष बिदेह पधारा है॥
कोटिन भानु हंस को रूपा, सबद है वहाँ अजब अनूपा।
हंसा करत चँवर सिर भूपा, बिन कर चँवर ढुलारा है॥
हंसा केल सुनो मन लाई, एक हंस के जो चित आई।
दूजा हंस समझि पुनि जाई, बिन मुख बैन उचारा है॥

ता आगे निःलोक है भाई,
पुरुष अनामी अकह कहाई।
जो पहुँचे जानेंगे वाही,
कहन सुनन से न्यारा है॥

रूप सरूप वहाँ कछु नाहीं, ठौर ठाँव कछु दीसे नाहीं।
अरज तूल कछु दृष्टि न आई, कैसे कहूँ सुमारा है॥
जा पर किरपा करिहैं साईं, गगनी मारग पावै ताही।
सत्तर परलय मारग माहीं, जब पावै दीदारा है॥
कहैं कबीर मुख कहा न जाई, ना कागद पर अंक चढ़ाई।
मानो गूँगे सम गुड़ खाई, सैनन बैन उचारा है।।

सो घर अगम अपार

सब्द घट तन में बोलत काल, इनहि रचा जंजाल।।
भला नाद आदि अपनी कूँ, सो घर सब्द न स्वाल।।
पाँच तत्त बैराग काया में, माया बिबस बेहाल।।
इंद्री बास बिंद उपजाया, जग बंधन जम जाल।।
आवा गवन भवन में भूले, झूले करम कराल।।
चौरासी बासी बंधन में, बिसरे दीन-दयाल।।
पिंड ब्रह्माण्ड दोऊ में नाहीं, सो घर अगम अपार।।
तुलसी तौल बोल विषया तजि, भजु पिया भरम निकाल।।

सातहू सर्ग अपवर्ग के पार में

सातहू सर्ग अपवर्ग के पार में,
जहाँ मैं रहौं ना पवन पानी।
चाँद ना सूर ना राति ना दिवस है,
उहाँ के मर्म ना बेद जानी॥
ज्ञान ना ध्यान ना ब्रह्मा न बिस्नु है,
पहुँच ना सकै कोउ ब्रह्म-ज्ञानी।
दास पलटू कहै एक ही एक है,
दूसरा नहीं कोउ राव रानी॥

पलटू साहिब कह रहे हैं कि सात स्वर्ग और अपवर्ग के पार जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ न पवन है, न पानी है। वहाँ न चाँद है, न सूर्य है, न दिन है, न रात है। वहाँ का भेद वेद भी नहीं जानता है। वहाँ ज्ञान और ध्यान की स्थिति भी नहीं है। न वहाँ ब्रह्मा जी हैं, न विष्णु जी और न ही वहाँ कोई ब्रह्म ज्ञानी ही पहुँच सकता है। पलटू साहिब कहते हैं वहाँ तो केवल एक ही परम-पुरुष है, दूसरा कोई राजा या रानी नहीं है।

हंस चले सतलोक

बिनु समुझे नहिं काज, आपने जीव का॥
जुगन जुगन हम आइ, कहा समझाइ कै।
बिनु समुझे धनि परिहौ, काल मुख जाइ कै॥
काम क्रोध मद लोभ, छाँड़ सब द्वन्द रे।
का सोवै दिन रैन, बिरहिनी जागु रे॥
भव सागर की आस, छाँड़ु सब फँद रे।
फिरि चलु आपन देस, यही भल रंग रे॥
सुन सखि पिय कै रूप, तो बरनत ना बने।
अजर अमर तो देस, सुगंध सागर भरे॥
फूलन सेज सँवार, पुरुष बैठे जहाँ।
ढुरै अग्र कै चँवर, हंस गजै जहाँ॥
कोटिन भानु अँजोर, रोम एक में कहा।
उगे चन्द्र अपार, भूमि सोभा जहाँ॥
सेत बरन वह देस, सिंहासन सेत है।
सेत छत्र सिर धरे, अभय पद देत है॥
जुगन जुगन अहिवात, अखण्ड सो राज है।
पिय मिलै प्रेमानन्द, तो हंस समाज है॥
कहैं कबीर पुकार, सुनो धर्मदास हो।

हंस चले सतलोक, पुरुष के पास हो॥

कबीर साहिब धर्मदास को समझाते हुए कह रहे हैं कि समझे बिना जीव का कल्याण नहीं होगा। मैं युग-युग से आकर जीव को समझाता आ रहा हूँ, मेरी बात को समझे बिना काल के मुख में ही जाओगे। हे धर्मदास! काम, क्रोध आदि को छोड़ दो, दिन-रात क्या मोह नींद में सो रहे हो, जागो और भवसागर की आशा छोड़कर अपने देश को चलो। उस परमात्मा रूपी प्रियतम के रूप का वर्णन नहीं हो सकता है। वो अजर, अमर देश है। करोड़ों सूर्य उसके एक रोम के आगे फीके पड़ जाते हैं। वहाँ की भूमि श्वेत है, ऐसा लगता है मानो करोड़ों चंद्रमा उगे हुए हों। वो श्वेत रंग का देश है। वहाँ सब कुछ श्वेत ही है। परम-पुरुष का सिंहासन भी श्वेत ही है। वो तो कभी न मिटने वाला आत्मा का सुगाह है। वहाँ परमानन्दमय प्रियतम परम-पुरुष है तो साथ में वहाँ हंसों का समाज भी है। हे धर्मदास! चल, उसी देश में चल, जहाँ परम पुरुष के पास बैठने का आनन्द मिलेगा।

अण्ड पिंड से पार सो देश हमारा है

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है।।
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, सील संतोष छिमा सत धारो।
मद्य माँस मिथ्या तज डारो, हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है।।
धोती नेती बस्ती बाओ, आसन पदम जुगत से लाओ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ, पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है।।
देव गणेस तहँ रोपा थानो, ऋध सिध चँवर ढुलारा है।।
स्वाद चक्र षटदल बिस्तारो, ब्रह्म सावित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ सब्द ओंकारा है।।
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंघासन बिस्नु बिराजा।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा, लछमो सिव आधारा है।।

द्वादस कँवल हृदय के माहीं, जंग गौर सिव ध्यान लगाई।
सोहं सब्द तहाँ धुन छाई, गन करैं जै जै कारा है।।
दो दस कँवल कंठ के माहीं, तेहि मध्य बसे अविद्या बाई।
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुराई, जहँ ऋङ्ग नाम उचारा है।।
ता पर कँवल है भाई, बग भौंरा दुइ रूप लखाई।
निज मन करत तहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है।।
कँवलन भेद किया निर्बारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
सतसँग कर सतगुरु सिर धारा, वह सत्य नाम उचारा है।।
आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झिंगा सब्द सुनाओ।
दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।।
चंद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरबेनी के संघ समाओ, भोर उतर चल पारा है।।
घंट संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई, बंकनाल धस पारा है।।
डाकिनी साकिनी बहु किलकारें, जम किंकर धर्म दूत हकारें।
सत्यनाम सुन भागें सारे, जब सतगुरु नाम उचारा है।।
गगन मँडल बिच उर्धमुख कुइया, गुरुमुख साधू भर भर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन कीया, जा के हिये अँधियारा है।।
त्रिकुटी महल में विद्या सारा, अनहद गरजें बजे नगारा।
लाल बरन सूरज उँजियारा, चतुर कँवल मँझार सब्द ओंकारा है।।
साध सोई जिन यह गढञ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा।
दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा, जहँ कुलुफ रहा मारा है।।
आगे सेत सुन्न है भाई, मानसरोवर पैठि अन्हाई।
हंसन मिलि हंसा होई जाई, मिलै जो अमी अहारा है।।
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा।
द्वादस भानु हंस उँजियारा, खट दल कँवल मँझार सब्द रंकारा है।।

महा सुन्न सिंघ विषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहीं बाटी।
व्याघर सिंघ सरप बहु काटी, तहँ सहज अचिंत पसारा है।।
अष्ट दल कँवल पारब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई।
बायें दस दल सहज समाई, यों कँवल निरवारा है।।
पाँच ब्रह्म पाँचो अंड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हो।
चार मुकाम गुप्त तहँ कीन्हो, जा मध बंदीवान पुरुष दरबारा है।।
दो पर्वत के संघ निहारो, भँवर गुफा ते संत पुकारो।
हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दरबारा है।।
सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पन्ने महल जड़ाये।
मुरली बजत अखंड सदाये, तहँ सोहं झनकारा है।।
सोहं हद्द तजी जब भाई, सत्य लोक की हद्द पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई, जा को वार न पारा है।।
षोड़स भानु हंस को रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंसा करत चँवर सिर भूपा, सत्य पुरुष दरबारा है।।
कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुनि चंद्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दीदारा है।।

आगे अलख लोक है भाई,
अलख पुरुष की तहँ ठकुराई।
अरबन सूर्य रोम सम नाहीं,
ऐसा अलख निहारा है।।

ता पर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताहि को राजा।
खरबन सूर्य रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है।।
ता पर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई।
जो पहुँचा जानेगा वा ही, कहन सुनन से न्यारा है।।
काया भेद किया निरबारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
माया अवगति जाल पसारा, सो कारीगर भारा है।।
आदि माया कीन्ही चतुराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई।
अवगति रचन रची अंड माहीं, ता का प्रतिबिंब डारा है।।

सब्द बिहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु दइ तारी।
खुले कपाट सब्द झनकारी, पिंड अंड के पार सो देस हमारा है।।

अमर लोक की राह में महाशून्य की घाटी बड़ी भयंकर है, जहाँ जीव को सद्गुरु के बिना राह नहीं मिल पाती है। ऐसा लगता है मानो शेर, चीते, साँप आदि काटने को दौड़ रहे हैं। महा अँधकार होने से ऐसा आभासित होता है। महाशून्यों को लाँघने के बाद अमर लोक आता है। वहाँ हमारा परम पुरुष रहता है, जिसका वर्णन वाणी से परे है। उसके एक रोम की इतनी महिमा है कि खरबों सूर्य और चाँद उसके एक रोम के आगे लज्जित हो जाएँ। सद्गुरु विहंगम चाल से उस देश में ले जाता है, जो पिंड और ब्रह्माण्ड दोनों से परे है।

अमरपुर ले चल हो सजना

अमरपुर ले चल हो सजना।।
अमरपुरी की साँकर गलिया, अड़बड़ है चढ़ना।
ठोकर लगी गुरु शब्द की, उघर गये झपना।।
वही अमरपुर लागि बजरिया, सौदा है करना।
वही अमरपुर संत बसत हैं, दरशन है लहना।।
संत समाज सभा जहँ बैठी, वही पुरुष अपना।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, भव सागर तरना।।

हे सदगुरु रूपी प्रियतम, मुझे अपने अमर लोक में ले चलो। अमरलोक की राह बड़ी सँकरी है। वहाँ चलना बड़ा कठिन है। वहाँ पर संतों का वास है और वहीं पर परम पुरुष का वास है। वहीं पहुँचकर यह हंस भवसागर से पार होता है।

सो वेद विधि जहँ खोजि न पाऊँ

यह मन काल रची भ्रम जाल।

सो जिव फरफंद के फंद में आये।।
यह रस रीति विषय बसि प्रीति।
सो गोह गुना गुन तीन में गायो।।
पाँच पचीस भया मन ईस।
सो कर्म के कार से सार भुलायो।।
जीव चराचर भूलि परा।
सोइ वेद के भेद से खान में आयो।।
ब्रह्म सनाथ बँधे तन साथ।
सो जीव अनाथ से ब्रह्म बँधायो।।
ब्रह्म की भास कहूँ तन बास।
सो किरन अकास रबी जिव आयो।।
सोई जिव जाल भया मन काल।
सो इच्छा की नाल कुचाल चलायो।।
अब ब्रह्म की आदि अनादि कहूँ।
सो भया विधि आदि विख्यात बताऊँ।।
गावत वेद निखेद जो नेति।
सो कहत न जाने निरंजन नाऊँ।।
निरगुन काल रचा जम जाल।
सो पुरुष दयाल को भेद सुनाऊँ।।
तीनुहिं लोक रहा मन सोक।
सो चौथे के पार पुरुष को ठाऊँ।।
ताहि पुरुष को जस्स कहूँ।
जा से सोलहि ब्रह्म बने हैं बताऊँ।।
पुरुष के पार निअच्छर सार।
सो संत निहारि बसे तेहि ठाऊँ।।
नाम अनाम को ठाम न गाम।

सो बाइस सुन्न के पार बताऊँ।।
संतहि सैल करैं नित केल।
सो देस अपेल का चैन चिताऊँ।।
उहाँ नहिं अकास चंदा रबि भास।
अगिन न स्वाद का बास न नाऊँ।।
नहिं निराकार न जोति की जार।
दसो औतार बैराट न ठाऊँ।।
ब्रह्मा न बिस्नु नहीं सिव कृस्न।
सो वेद विधि जहँ खोजि न पाऊँ।।
तुलसी वोही धाम को नाम नहीं।
सो बसैं सब संत महूँ पुनि जाऊँ।।

सत्यलोक की अकह कहानी

सत्यलोक की अकह कहानी। सोइ निज सतगुरु की सहदानी॥
रूप बरन जहँ वहँ नहिं देसा। तीन लोक अचरज सा देखा॥
नहिं वहँ पाँच तत्त की काया। सत्यपुरुष आपहि निर्माया॥
नहिं प्रकृति पचीसो होई। जरा मरन जाने नहिं कोई॥
दस इंद्री नाहीं षट कर्मा। बरन भेद नाहीं कुल धर्मा॥
दिवस न रैन चंद्र नहिं सूरा। बिमल प्रकास सकल विधि पूरा॥
स्वर्ग नरक गुन तीन न होई। सब्द सरूप सकल है सोई॥

कह रहे हैं कि सत्य लोक की बात कहने में नहीं आती है। वहाँ तीन लोक वाली कोई भी बात नहीं है। वहाँ सब शब्द सरूप हैं।

दस मुकामी रेख़ता

चला जब लोक को सोक सब त्यागिया,
हंस को रूप सतगुरु बनाई।

भृंग ज्यों कीट को, पलटि भृंगि करे,
आप सम रंग दै, लै उड़ाई॥
छोड़ि नासूत मलकूत को पहुँचिया,
बिस्नु की ठाकुरी दीख जाई।
इन्द्र कुबेर रंभा जहाँ नृत करैं,
देव तैंतीस कोटिक रहाई॥
छोड़ि बैकुण्ठ को हंस आगे चला,
शून्य में जोति जगमग जगाई।
जोति परकास में निरखि निःतत्व को,
आप निर्भय भया भय मिटाई॥
अलख निर्गुण जेहि वेद अस्तुति करै,
तीनहूँ देव को है पिताई।
भगवान तिन के परे सेत मूरत धरे,
भग की आनि तिनको रहाई॥
चार मोकाम पर खण्ड सोरह कहे,
अंड को छोर ह्याँ तें रहाई।
अंड के परे अस्थान आचित को,
निरखिया हंस जब उहाँ जाई॥
सहस औ द्वादसौं रूह है संग में,
करत किलोल अनहद बजाई।
तासु के बदन की कौन महिमा कहौं,
भासती देंह अति नूर छाई॥
महल कंचन बने मनी ता में जड़े,
बैठ तहँ कलस अखण्ड छाजे।
अचिंत के परे अस्थान सोहंग का,
हंस छत्तीस तहवाँ बिराजे॥

नूर का महल और नूर की भूमि है,
तहाँ आनन्द सों दुन्द भाजे।
करत किलोल बहु भांति से संग इक,
हंस सोहंग के जों समाजे॥
हंस जब जात षट चक्र को बेधि के,
सात मोकाम में नजर फेरा।
परे सोंहग के सुरति इच्छा कहीं,
सहस बावन जहाँ हंस हेरा॥
रूह की रासि तें, रूप उन को बनो,
नाहिं उपमाहिं दूजी निबेरा।
सुरति से भेंट के सब्द की टेक चढ़ि,
देखि मोकाम अंकूर केरा॥
शून्य के बीच में बिमल बैठक तहाँ,
सहज अस्थान है गैब केरा।
नवो मोकाम यह हंस जब पहुँचिया,
पलक बिलम्ब ह्वाँ कियो डेरा॥
तहाँ से डोरिमक तार ज्यों लागिया,
ताहि चढ़ि हंस गौ दै तरेरा।
कये आनन्द सों फँद सब छोड़िया,
पहुँचिया जहाँ सत्यलोक मेरा॥
हंसनी हंस सब गाय बजाय के,
साजि के कलस वोहि लेन आये।
जुगन जुग बीछुरे मिले तुम आइ के,
प्रेम करि अंग सो अंग लाये॥
पुरुष ने दरस जब दीन्हिया हंस को,
तपनि बहु जन्म की तब नसाये।

पलटि के रूप जब एक सों कीन्हिया,
मनहुँ तब भानु षोड़स उगाये॥
पुहुप के दीप पियूष भोजन करै,
सब्द देंह जब हंस पाई।
पुष्प के सेहरा हंस और हंसिनी,
सच्चिदानन्द सिर छत्र छाई॥
दिपै बहु दामिनी दमक बहु भांति की,
जहाँ घन सब्द की घुमड़ लाई।
लगे जहँ बरसने गरज घन घोर के,
उठत तहाँ सब्द धुनि अति सुहाई॥
सुनै सोइ हंस तहं जुत्थ के जुत्थ ह्वै,
एक ही नूर इक रंग रागे।
करत बिहार मन भावनी मुक्ति भे,
कर्म औ भर्म सब दूरि भागे॥
रंग औ भूप कोई परखि आवै नहीं,
करत किलोल बहु भांति पागे।
काम औ क्रोध मद लोभ अभिमान सब,
छाड़ि पाखण्ड सत्य सब्द लागे॥
पुरुष के बदन की कौन महिमा कहौं,
जगत में उभय कछु नाहिं पाई।
चंद्र औ सूर गन जोति लागै नहीं,
एकहू नख की परकास भाई॥
पान परवान जिन बंस का पाइया,
पहुँचिया पुरुष के लोक जाई।
कहैं कबीर यहि भांति सों पाइ हो,
सत्य की राह सो प्रगट गाई॥

कबीर साहिब ने जब मुहम्मद साहिब को अमर-लोक की सैर कराई तो जिन-जिन मुकामों को देखते हुए आगे बढ़ते गये, उन सबका हाल बताया है। सबसे पहले जीव को भृंगी-कीट की तरह हंस समान करके ले गये। वैकुण्ठ, ब्रह्म लोक, निरंजन लोक और फिर सातों आकाश से परे कैसे परम-पुरुष के धाम पहुँचे, यह सब बताया है।

कह रहे हैं कि जब अमर लोक को हंस चला तो संसार के दुख छुट गये। सद्गुरु ने भृंगी की भांति उसे अपने रंग में रँगकर हंस समान कर दिया और उड़ाकर ले गये। पहले नासूत (माया का देश) स्थान पर पहुँचे और फिर वहाँ से मलकूत (वैकुण्ठ) पहुँचे और विष्णु जी की नगरी देखी, जहाँ तैंतीस करोड़ देवता और अप्सराएँ आदि थीं। फिर जब उसे स्थान को छोड़कर हंस आगे चला तो शून्य (ज्योति-निरंजन) में जगमग ज्योति को देखा। यही स्थान अलख निरंजन का है, जिसकी वेद, पुराण आदि स्तुति गाते हैं और जो तीनों देवों का पिता भी है। फिर वहाँ शून्य से आगे निकलकर अचिंत लोक में पहुँचे। ऐसे ही आगे चलते गये और सहज लोक में पहुँचे। जैसे-जैसे आगे बढ़ते जा रहे थे, आनन्द बढ़ता जा रहा था। सहज लोक के बाद सत्य लोक आया। वहाँ पहुँचे तो सब हंस आकर मिले, गले लगे। फिर जब परम-पुरुष के सम्मुख हुए तो साहिब ने हंसों को दर्शन दिया। तब जन्म-जन्मांतरों के तपन बुझ गयी और हंसों में 16 सूर्यों का प्रकाश आ गया। वहाँ हंस अमृत भोजन करने लगा। वहाँ सब हंसों की देह शब्द की है। इस तरह अमर-लोक का नज़ारा देखा। सांसारिक भाव में कह रहे हैं कि परम-पुरुष के शरीर की महिमा तो कही ही नहीं जा सकती है। उसके तो एक नख के प्रकाश की महिमा की तुलना सूर्य, चाँद, तारों की ज्योति से नहीं की जा सकती है



बावन से बाहर करे

ब्रह्मा वेद पढ़ि जोति में, जन्म गमांयों वादि॥
पांच तत्व गुण तीन लग, अनहद सुन्न प्रयान।
गुप्त मता है सन्त को, बड़ भागी कोइ जान॥
जहँलग बानी मुख कही, तहँ लग काल को ग्रास।
बनी परै जो शब्द है, सो सदगुरु के पास॥
सदगुरु कहत पुकार के, हृदया करो विचार।
कहनहार गुरु चीन्ह के, शब्द में सुरति सम्हार॥
पौ के फन्दे पच मुए, ब्रह्मा विष्णु महेश।
नि:अक्षर चीन्हा नहीं, बिन सदगुरु उपदेश॥
आदि गुरू का ज्ञान लै, कीन पुकार कबीर।
नाम कहै सो भूल है, ज्ञान लखै सो थीर॥
नि:अक्षर जब पावै, जब गुरु होय दयाल।
बावन से बाहर करै, तब जुटे घर काल॥
उनमुन ध्यान अगोचर, कहत सकल बुधिवंत।
माया क्षर ये जानिये, गुप्त मता है सन्त॥
मंत्र यंत्र भ्रम जाल है, अक्ल उक्त से थाप।
नाम नि:अक्षर शब्द है, सुरति निरति से जाप॥
काल प्रबल सिर पर खड़ा, रैन दिवस कर चोट।
अहङ्कार असवार है, बचि है किसकी ओट॥
तीन लोक में काल है, चौथा नाम निरवान।
जो यह भेद न जानहीं, सो नर वृषभ समान॥
दस औतार निरंजन, बस कीन्हों संसार।
रक्षक भक्षक होय के, सब का करे संहार॥

योगी जङ्गम सेवड़ा, संन्यासी दुरवेश।
ब्राह्मण खट दरशन में, काल फंद के रेश॥
जप तप संयम नेम धर्मं, योग ध्यान दृढ़कीन॥
कहें कबीर विन सद्गुरू, भरम न काहूचीन ॥
ज्ञानी योगी कवि सब, पड़े भरम के माँहि।
सांच नाम जाने बिना, मूख मूख अल्लाहि॥
शब्दै २ सब कहैं, शब्द लखे नहिं कोय।
सारशब्द जेहि लखि परै, छत्र धनी है सोय॥
ऋषिमुनि निजमत कल्प के, प्रगट कीन बहु ग्रंथ।
यह अपनो अज्ञान से, सूझ नहीं सत पंथ॥
जड़ चेतन को झगड़ा, बहु प्रकार से लाग।
जड़ माया की शक्ति है, चेतन गुरुपद जाग॥
निराकार चेष्ठा रहित, व्यापक ब्रह्म अखंड।
तेहि तज विद्या हीन नर, पूजहिं मूर्ति पखंड॥
ज़्यों प्रतिमा रख शीष में, श्वान परा अज्ञान।
अस सब जीव भरम मैं, कूद परे बिन जान॥
केहरि छाया देखि के, कूद परा अकुलाय।
जंत्र-मंत्र में ज्यों फँसे, पीछे नर पछिताय॥
ज्यों मरकट मूठी गह्यो, छोड़े नहिं वश लोभ।
त्यों नर क्षर के वस परे, मिटे न मन का क्षोभ।
यहि विधि सब जग जात है, पोके फंदे फंद॥
सार सब्द चीन्हा नहीं, तात परे यम द्वन्द।
जहँ लग नाम कहने परा, सो सब क्षर के माहिं॥
कहन हार अक्षर अहै, समझो गुरु के पाँहि।
क्षर-अक्षर निरवार के, निह अक्षर गह सार॥
निह अक्षर जब पावई, तब ही भव के पार॥
अक्षर भेद न जानहीं, क्षर मैं सब नर बन्द।

निह अक्षर जब पावही, तबै मिटे जीव फन्द॥
सिद्ध साधु सब पंचमुए, क्षर के परे झमेल।
निह अक्षर जाने बिना, भये काल के चेर॥
औंकार निश्चय किया, ये कर्ता मन जान।
सांचा शब्द कबीर का, गुरु से ले पहिचान॥
शब्द हमारा तू शब्द का, सुनमत जाहु सरक।
जो चाहो निह तत्व को, शब्दहिं लेव परख।
शब्द हमारा आदि का, शब्दहिं पैठा जीव॥
फूल रहन की ठोकरी, घोरे खाया घीव।
शब्द बिना सुरत आँधरी, कहो कहां को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर २ भटका खाय।
शब्द २ बहु अन्तर, सार शब्द मथ लीजे॥
कहें कबीर जह सार शब्द नहिं, धिक जीवन सो छीजे।
जागृति देह अकार है, उकार स्वपना भास।
तेजस मकार जानिये, तुरिया ब्रह्म प्रकाश॥
इन सबहिन से भिन्न है, निःअक्षर नाम स्वरूप।
धर्मदास चित सुमरिके, पहुँचो लोक अनूप॥
धरण अकाश से बाहर, सुमिर निहअक्षर सार।
होत धुनी अति सुन्दर, सत्य लोक विस्तार॥
धरण अकाश के बाहर, अधरय बैठे जाय।
तहाँ ते सुरति लगावहीं, शब्द में रहे समाय॥
निराधार आधार है, तामें रहे समाय।
अनन्त सूर्य प्रकाश है, जब देखोगे जाय॥
वहाँ जावगे जब तुम, सुध न रहे यह देह।
पाँच तत्व गुण तीन नहिं, ऐसा शब्द विदेह॥
झिलमिल झगड़ा झूलते, बाकी छूट न काहु।
गोरख अटके कालपुर, कौन कहावे साहु॥

पाहुन पानी नापते, दरिया करते फाल।
हाथन परवत तोलते, तेहि घर खायो काल।
तीनों गुण का खेल है, उपजै खपै संसार।
चौथा समरथ लोक है, ताको करो बिचार॥
क्षर-अक्षर निहअक्षर बूझे सूझ गुरू परचावे।
क्षर परहर अक्षर लौलावे, तब निहअक्षर पावे॥
सुरत निरत पर जो कहो, अंतर दृष्टि समाय।
यह करनी सत पुरुष की, रहन रहे ठहराय॥
अक्षर गहे विवेक कर, पौसे पावे भिन्न।
कहे कबीर निह अक्षर, लहे संत कोइ चिन्ह॥
आठ पहर चाटक लगे, तलफत है दिन-रैन।
गहनी गहे सम्हार के, तब पावे सुख-चैन॥
निह तत्व भेद यहु गुप्त है, पाँच-तीन से नियार।
निह तत्त्वी जो हंस ह्वै, जाय पुरुष दरबार॥
चपरासी ताको जानिये, जाके सुरत रहे चपरास।
तन मन कर्मं ना छोड़े, मिटे काल की त्रास॥
नाम सनेही हँसा, भाषो घर की डोर।
निरखो गुरु गम सुरत से, हँस हिरम्बर होर॥
साँच सिपाई जो भये, नहीं गहे हथियार।
शब्द सुरत जुग मिल रहे, कर्ता ताको यार॥
आदि नाम निज मंत्र है, और मंत्र सब छार।
कहें कबीर निज नाम बिन, बूड़ मरा संसार॥
सुरत समावे नाम में, सब जग सोवत होय।
खुले दृष्टि दर्शन मिले, अन्तर पट दै सोय॥
निह अक्षर है जाप पर, सोई गुरु है सार।
बावन अक्षर ध्यावहीं, ते भव होय न पार॥
सप्त कोटि जो मंत्र है, चित भरमावन काज।

निह अक्षर पर मंत्र है, सकल मंत्र को राज॥
ज्ञान कथै चक-वक मरे, नाहक करे उपाधि।
सतगुरु कहत पुकार के, सुमिरन करो समाधि।
सारशब्द मैं थिर रहो, अस्थिर अचल समाज।
धर्मदास हर्षित भये, पाया सुक्ख अगाधि॥
सबको नाम सुनावहू, जो आवे तुव पास।
शब्द हमारा सत्य है, दृढ़ राखो बिश्वास॥
बिन गुरु ज्ञान न पावहीं, शब्द न आवे हाथ।
कहें कबीर तब पाय है, भेदी लीजे साथ॥
महा चैतन्य निःअक्षर, खंड ब्रह्मण्ड के पार।
धर्मदास तुम सुमिर के, उतरो भवजल पार॥
अक्षर चेतन ब्रह्म है, सो हम दीन्ह लजाय।
पौ अकार से क्षर कही, दुनियां गई भुलाय॥
महा चैतन्य परमात्मा, निःअक्षर है सार।
आठ पहर अभ्यास कर, सुरत शब्द आधार॥
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय कह, ध्याता ध्यानी ध्येय।
तीन त्रिपुटी नाश भयो, निःअक्षर लख लेय॥
ब्रह्म स्वरूप प्रकास कह, वाच अवाच लखाय।
सारशब्द जाना नहीं, धोखे जनम गवाय॥
सत्यनाम की शोभा, कहनो करो बखान।
निःअक्षर जो जानि है, सोई संत सुजान॥
परखे द्वारा सब्द का, जो गुरु कहैं पुकार।
सब्द खोज बिन ना मिलै, देखो हृदय विचार॥
नाम मिलावे रूप को, जो जन खोजी होय।
जब वह रूप हृदय बसै, सुधा रहै न कोय॥
सेवा गुरू की कीजिये, सब सेवा जेहि माहिं।
जो तू सींचे मूल को, फूले फले अघाहि॥

मान बड़ाई को करे, कवहुं न मुख से बात।
अष्ठ सिद्ध नव निद्धि को, साधू मारत लात॥
संतों की सिद्धी यही, देहिं सत्य उपदेश।
अतिहित मीठे वचन कह, काटत कर्म कलेश॥
करिये नित सतसंग को, बाधा सकल मिटाय।
फिर यह अवसर ना मिलै, दुर्लभ न रतन पाय॥
कल में जीवन अल्प है, कर लेउ वेग सम्हार।
तप साधन नहिं हो सकै, केवल नाम अधार॥
कोटि तीर्थ व्रतदान तप, कोट योग जप ध्यान।
कोटि ज्ञान विज्ञान मुख, तुलै न नाम समान॥
जहाँ भक्ति तहं भेष नहिं, वर्णा श्रमहि तहं नाँहि।
नाम प्रेम है दुर्लभ, कह कबीर जग माहिं॥
जाकी गांठी नाम है, ताके हैं सब सिद्धि।
कर जोरे ठाड़ी सवै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥
आदि कहा अब कहत हों, अन्त कहैंगे सोय।
सो वक्ता जिह लख परै, ति परचें गुरु होय॥
माला लक्कड़ पूजा पत्थर, तीरथ है सबपानी।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, चारोंवेद कहानी॥
पत्थर पूजे सिरिया, कर जोरे घिघयाय।
नि:अक्षर खोजा नहीं, बांधे यमपुर जांय॥
सतगुरु जीव प्रमोध के, नाम लखावें सार।
सार शब्द को जो गहे, सोई उतरे पार॥
पिंड ब्रह्मण्ड के पार है, सत्यपुरुष निजधाम।
सारशब्द जो कोई गहै, लहै तहां विश्राम॥
नहिं उतपति नहिं प्रलय, नहिं आवे नहिं जाय।
कह अकह ते भिन्न है, बूझ के शब्द समाय॥
जो कछु कहवे आवही, ताको है सब नाश।

कह अकह ते भिन्न है, सार शब्द प्रकाश॥
मैंने तो सब की कही, मोको कोई न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, जुग-2 कहेय आन॥
मसि कागज छूयो नहिं, कलम गह्यौ नहिं हाथ।
चारौ युग का महातम, मुख कबीर जुनाई बात॥
आधी साखी सिर कटे, जो निरवारी जाय।
क्या पंडित की पोथियां, रात-दिवस मिल गाय॥
कहन-सुनन देखब, सब अक्षर में जान।
गुप्त नि:अक्षर देखो, अन्तर दृष्टि समान॥
जीव अशंख जहड़े गये, बिन समझे निज भेद।
कोई हँस निरबार है, नीर-क्षीर का भेद॥
सन्त कोटि बैठे जहाँ, ज्ञानी लक्ष अनेक।
सार शब्द में जो रती, सो अनन्त में एक॥
गहु सीढ़ी गुर ज्ञान की, चढ़ो महिल निज देश।
आतम परमातम मिले, सुन विज्ञान सन्देश॥



पुस्तक सूची

हिन्दी में

1. परा रहस्या
2. मासिक पत्रिका सत्यकेतु
3. पावन प्रार्थनाएँ
4. सद्गुरु चालीसा
5. वार्षिक डायरी
6. सद्गुरु भक्ति
7. कहाँ से तू आया और कहाँ तुझे जाना रे?
8. सत्संग सुधारस
9. नाम अमृत सागर
10. अमृत वाणी
11. सद्गुरु नाम जहाज़ है
12. चल हंसा सतलोक
13. कोटि नाम संसार में तिनते मुक्ति न होय
14. मूल नाम गुप्त है, जाने बिरला कोय
15. गुरु सुमिरै सो पार
16. तीन लोक से न्यारा
17. सेहत के लिए ज़रूरी
18. सहजे सहज पाइये
19. रोगों से छुटकारा
20. सद्गुरु महिमा
21. भक्ति के चोर
22. अनुरागसागर वाणी
23. भक्ति सागर
24. हरि सेवा युग चार है, गुरु सेवा पल एक
25. सत्य नाम के सुमरते उबरे पतित अनेक
26. काग पलट हंसा कर दीना
27. कस्तूरी कुण्डल बसै मृग खोजे बन माहिं
28. गुरु पारस गुरु परस है
29. गुरु अमृत की खान
30. शीश दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान
31. मूल सुरति
32. भृंग मता होय जिहि पासा, सोई गुरु सत्य धर्मदासा
33. मैं कहता हूँ आँखिन देखी
34. गुरु संजीवन नाम बतावे
35. नाम बिना नर भटक मरे
36. रोगों की पहचान
37. यह संसार काल को देशा
38. न्यारी भक्ति
39. साहिब तेरी साहिबी सब घट रही समाय
40. जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाए

41. आयुर्वेद का कमाल रोगों के निदान में
42. सुरति समानी नाम में
43. सबकी गठरी लाल है, कोई नहीं कंगाल
44. निन्दक जीवे युगन युग काम हमारा होय।
45. निराले सद्‌गुरु
46. कुँजड़ों की हाट में हीरे का क्या मोल
47. जीवड़ा तू तो अमर लोक का पड़ा काल बस आई हो
48. मुझे है काम 'सद्‌गुरु से जगत रूठे तो रूठन दे'
49. जेहि खोजत कल्पो भये घटहि माहिं सो मूर
50. आत्म ज्ञान बिना नर भटके
51. बिन सतगुरु बाँचे नहीं कोटिन करे उपाय
52. अँधी सुरति नाम बिन जानो
53. सत्यनाम निज औषधि सद्‌गुरु दई बताय
54. सेहत संजीवनी
55. भक्ति दान गुरु दीजिए
56. मन पर जो सवार है ऐसा ऐसा विरला कोई
57. सत्यनाम है सार बूझौ सन्त विवेक करि
58. रोग निवारक
59. मुक्ति भेद मैं कहौं विचारी
60. ''तेरा बैरी कोई नहीं तेरा बैरी मन''
61. सुरति का खेल सारा है
62. सार शब्द निहअक्षर सारा
63. करूँ जगत से न्यार
64. बिन सत्संग विवेक न होई
65. सत्य नाम को जनि कर दूजा देई बहा
66. सुरत कमल सद्‌गुरु स्थाना
67. अब भया रे गुरु का बच्चा
68. मनहिं निरंजन सबै नचाए
69. सत्यपुरुष को जानसी तिसका सतगुरु नाम
70. आपा पौ आपहि बँध्यो
71. सत्य भक्ति का भेद न्यारा
72. जपो रे हंसा केवल नाम कबीर
73. सत्य भक्ति कोई बिरला जाना
74. जगत है रैन का सपना
75. 70 प्रलय मारग माहीं
76. सार नाम सत्यपुरुष कहाया
77. आवे न जावे मरे न जन्मे सोई सत्यपुरुष हमारा है
78. निराकार मन
79. सत्य सार
80. सुरति
81. भक्ति रहस्य
82. आत्म बोध
83. अमर लोक